※ वन्दे-वीरम् ※

प्रश्नव्याकरण-सूत्र

का

हिन्दी अनुवाद

अनुवादक —

जैन-दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता प० मुनि श्री
चौथमल जी महाराज के सुशिष्य
मुनि श्री केवलचन्द जी
महाराज ।

प्रकाशक —
श्रीमान् लाला दीपचन्द जी के सुपुत्र
लाला गुलाबचन्दजी जैन, रईस
केसरगज अजमेर
की ओर
से

प्रथम संस्करण	सप्रेम-उपहार	वीर सम्वत् २४६५
१०००		विक्रम सम्वत् १९९५

* चित्र-परिचय *

पाठकों! जिन का चित्र आप इस पुस्तक में देख रहे हैं। वे पल्लीवाल जाति के मान्य पुरुषों में से हैं। आपका जन्म सं० १९४ भाद्रपद कृष्णा १३ का है। आपका नाम गुलाबचन्दजी तथा आप के पूज्य पिता का नाम लाला दीपचन्द जी जैन है। अजमेर, केसरगंज आपका निवास स्थान है।

बाल-वय में ही आपकी धर्म की ओर हृदय में अभिरुचि है। आप श्रीमद्जैनाचार्य प्रकाण्ड पण्डित स्वर्गीय माधव मुनि जी महाराज के शिष्य और परम भक्त हैं। अब भी वार्तालाप के प्रसंग में आपकी भक्ति की प्रगाढ़ता से उनकी स्मृति ताजी हो जाती है।

आप बड़े चतुर सज्जन, एवं उदारचित्त हैं। पद प्राप्त करके उस की जिम्मेदारी निबाहने की भी आप में पूरी पूरी क्षमता है। अनेक ज कार्यभार को ग्रहण करके आपने उसे सम्मान-पूर्वक निभाया है और यश प्राप्त किया है। आप पाँच वर्षों तक रियासत टोंक में Personal Assistant Finance Member & Adviser और दो वर्ष त अलवर में Special Officer रह चुके हैं।

आपका जीवन-परिचय प्रस्तुत पुस्तक में लगाने की इच्छा आपको लिख भेजने का आग्रह किया गया था। परन्तु आपने ज्ञान-दा को ही विशेष महत्व दिया। अतएव जो कुछ परिचय मुझे प्राप्त सका वही पाठकों के सम्मुख है।

लोहामण्डी, आगरा।
२५-२ ३९

आपका :—
पदमचन्द जैन,

प्रश्न व्याकरण—सूत्र

श्रीमान् लाला गुलाबचन्द जी जैन रईस,

केसरगज, अजमेर।

प्रस्तावना

आर्यावर्त्त सदा से ही आस्तिकता और आध्यात्मिकता का मुख्य केन्द्र रहा है। संसार को उसने जो दिव्य उपहार प्रदान किये हैं सचमुच वे अमूल्य हैं। उनकी अमूल्यता का प्रमाण केवल यही नहीं है कि व्यक्ति आर्य आदर्शों का अनुसरण करके सांसारिक सुख की चरम सीमा को प्राप्त कर सकता है। यद्यपि यह ठीक है कि उन आदर्शों को अपने जीवन में स्थान देने वाला महात्मा लोक मे अपने व्यक्तित्व को ऊँचे से ऊँचा, सफल और आदर्श बना सकता है किन्तु आर्य-जनता का आदर्श इससे भी ऊँचा-बहुत ऊँचा है। वह शाश्वत सुख, शाश्वत शान्ति, शाश्वत सतोष और शाश्वत अव्याबाध के अक्षय कोष मुक्ति में परिसमाप्त होता है।

इस परम मुक्त दशा को प्राप्त करने के लिये आर्य मुनियों ने अनेक साधनों का अन्वेषण किया है। इन विभिन्न साधनों के अनुसार उनकी साधना मे भी किञ्चित् भेद दृष्टिगोचर होता है। यह भेद यद्यपि मुख्य रूप से साधनों का भेद है और साधनों के इस भेद के कारण सामान्य मुमुक्षु कभी कभी चक्कर मे पड जाता है। उसे यह नहीं सूझता कि एक ही लक्ष्य की प्राप्ति के लिये यह जो अनेक मार्ग बतलाये जा रहे हैं उनमे से मुझे किसका अनुसरण करना चाहिए और किसका नहीं? किन्तु यदि

अधिक अवधान के साथ विचार किया जाय और देश-काल-पात्र के आवरणों को हटा कर देखा जाय तो ज्ञात होगा कि इस विभिन्नता के भीतर एक विचित्र समता सबमें पाई जाती है। यह सर्वव्यापक समता ही ऐसी कुंजी है जिसे पाकर जिज्ञासु तत्त्वज्ञान की तिजोरियों के बहुमूल्य रत्नों का स्वामी बन सकता है। वह उन रत्नों के प्रकाश में अपने प्रशस्त पथ का गवेषण कर सकता है और फिर उसे इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

प्रस्तुत सूत्र में उसी व्यापक समता का आदि से अन्त तक विवेचन किया गया है। यद्यपि यह जैन परम्परा का सूत्र है किन्तु इसमें प्रतिपादित वस्तु इतनी सामान्य है कि क्या जैन और क्या अजैन सबके लिये समान रूप से ग्राह्य है। अतएव यह कहा जा सकता है कि प्रश्न-व्याकरणसूत्र किसी एक सम्प्रदाय, पंथ या आम्नाय का शास्त्र नहीं है वह विश्वसाहित्य की एक अनोखी और महार्घ वस्तु है और निःसंकोच होकर प्रत्येक सम्प्रदाय का, प्रत्येक पंथ का और प्रत्येक आम्नाय का मुमुक्षु उसका अध्ययन-चिन्तन-मनन करके अपने जीवन को उन्नत और सार्थक बनाने में सफल हो सकता है।

वे समानता के सिद्धान्त क्या हैं जिनके सर्वत्र दर्शन होते हैं? और प्रस्तुत सूत्र में का प्रतिपाद्य विषय क्या है? आइये, जरा इसका दिग्दर्शन करें।

प्रश्न व्याकरण सूत्र के मुख्य दो भाग हैं, जिन्हें जैन शैली में द्वार कहते हैं। पहला आस्रव द्वार और दूसरा संवर द्वार है। प्रथम आस्रव-द्वार में पाँच अध्यायों द्वारा हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह इन पाँच पापों का विशद विवेचन किया गया है। दूसरे द्वार में इन पाँचों पापों के त्याग रूप जो पाँच महाव्रत होते हैं उनका विस्तृतवर्णन है।

अहिंसा धर्म है, हिंसा अधर्म है, इस विषय में साम्प्रदायिक मतभेद नहीं है। जिन सम्प्रदायों ने अहिंसा पर बहुत अधिक बल नहीं दिया है

उन्होंने भी उसे अधर्म तो माना ही है। जैसे शिक्षक विद्यार्थी की योग्यता के अनुसार ही उसे ज्ञान देता है उसी प्रकार धर्म-प्रवर्त्तक भी जनता की योग्यता को देख कर ही धर्म के व्यावहारिक सिद्धान्तो का उपदेश देता है। यदि धर्म-प्रवर्त्तक ऐसा न करे तो उसके उपदेश की वही दशा होगी जो पहली दूसरी कक्षा के विद्यार्थी के समक्ष एम० ए० कक्षा का तत्त्वज्ञान बघारने वाले शिक्षक की होती है। इसी प्रकार धर्म-प्रवर्त्तक को देश और काल का भी विचार करना पडता है। इन्हीं सब कारणों से अहिंसा के उपदेश मे तारतम्य दिखलाई पड़ने पर भी अहिंसा की धार्मिकता सर्व-धर्म-सिद्ध है। हाँ, प्रत्येक निष्पक्ष विचारक यह स्वीकार करता है कि जैन-धर्म ने अहिंसा के सिद्धान्त का जो बारीक से बारीक निरूपण किया है वह अन्यत्र कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। प्रकृत ग्रन्थ इस कथन की स्पष्टसाक्षी है इसी प्रकार सत्य अचौर्य आदि की धार्मिकता भी निर्विवाद है।

यही नहीं वरन् जो लोग पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से प्रभावित होकर या धर्मों मे हुई बाह्य विकृति को धर्म का स्वरूप मानकर धर्म के प्रति उदासीनता प्रदर्शित करते हैं, और केवल नीति मर्यादा से ही धर्म की आवश्यकता पूरी कर लेने के पक्षपाती हैं वे भी अहिंसा और सत्य आदि की उपादेयता का अस्वीकार नहीं कर सकते इस युग मे, जब कि महात्मा गांधी ने अहिंसा की अपूर्व और अलौकिक शक्ति का चमत्कार विश्व के समक्ष प्रकट कर दिया है इस सम्बन्ध म अधिक कहने की आवश्यकता ही नही रह गई है। अब भारतीय जनता ने समझ लिया है कि अहिंसा और सत्य के विना व्यक्ति, समाज, राष्ट्र या विश्व की मुक्ति नहीं है। जगत् म सच्ची शान्ति की स्थापना अहिंसा के आधार पर ही होना सम्भव है।

जब अहिंसा का इतना अधिक माहात्म्य है तो यह भी आवश्यक है कि जनता अहिंसा के असली स्वरूप को ठीक-ठीक समझ ले, क्योंकि किसी

वस्तु-का सम्यक् परिज्ञान हुए विना उसके आचरण मे त्रुटि रह जाती है और कभी-कभी तो उसका आचरण खतरनाक भी हो जाता है। इस दृष्टि से प्रश्न व्याकरण सूत्र का पारायण करना प्रत्येक मनुष्य का विशेषत. भारतीय का कर्तव्य है, क्योंकि अहिंसा हमारी राष्ट्रनीति के रूप मे स्वीकृत है।

प्रकृत सूत्र में हिंसा-अहिंसा आदि का स्पष्टी-करण करने के लिए उनके पर्याय-शब्दों नामान्तरों-का उपयोग किया गया है। उदाहरणार्थ हिंसा के ३० और अहिंसा के ६० नाम बतलाये गये हैं। शास्त्रकार का यह व्यापार अत्यन्त रहस्य पूर्ण है। इससे हिंसा-अहिंसा का सूक्ष्म स्वरूप विदित हो जाता है। हिंसा के नामों मे प्राणवध प्रथम है। प्राणवध के हिंसा होने मे कोई आश्चर्य ही नहीं है। परन्तु जब हम देखते हैं कि अकृत्य (पाँचवाँ नाम, पृ० २) असयम (चौदहवाँ नाम पृ० ३) और भयङ्कर (२३ वाँ नाम) भी हिंसा है, तब हमे हिंसा की व्यापकता का पता चलता है। इस प्रकार इन नामो से मालूम होता है कि अकृत्य कार्य करना भी हिंसा है, असयम भी हिंसा है और दूसरे को भयभीत करना भी हिंसा है। इस प्रकार इन नामों मे हिंसा रूपी वृक्ष की विभिन्न शाखाओं का परिचय मिलता है। इसी प्रकार अहिंसा आदि के विभिन्न नामो से अहिंसा की शाखाओं का ज्ञान होता है। पाठकों को हम प्रेरणा करेंगे कि वे इन नामों को अच्छी तरह समझ बूझ कर पढे, और फिर अपने जीवन को इस कसौटी पर कस कर देखे। पाँच आस्रवों और सवरों के यह नामान्तर इस सूत्र मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अश है।

नामान्तर देने के बाद हिंसा आदि के कारणों का विवेचन करते हुए फिर इनका फल बतलाया गया है। हिंसा यदि अशुभ है तो उसका फल अशुभ ही हो सकता है, शुभ कदापि नही हो सकता। यही बात सूत्रकार ने प्राचीन आस्तिक-पद्धति के अनुसार विस्तार से बतलाई है।

पाँचवाँ आस्रव द्वार परिग्रह है। यो तो प्रत्येक धर्म ने त्याग की महत्ता

को एक स्वर से स्वीकार किया है पर अहिंसा की भाँति अपरिग्रह को भी जैन-धर्म ने शिखर पर आरूढ कर दिया है। यहाँ परिग्रह को हिंसा की ही भाँति पाप स्वीकार किया गया है और परिग्रही भी अधार्मिक है। फिर भी हमारे समाज में आज परिग्रह को घृणा की दृष्टि से नहीं देखा जाता। और आश्चर्य की बात तो यह है कि परिग्रह प्रतिष्ठा का कारण बना हुआ है और इसका मुख्य कारण यह है कि हमने अज्ञानवश धर्म को अपने जीवन से पृथक् मान लिया है। धर्म जैसे स्थानक, मन्दिर और पोषधशाला की वस्तु है, मकान और दुकान से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसीलिए धर्म स्थानों में परिग्रह की निन्दा करने के पश्चात् तत्काल ही बाहर निकल कर हम परिग्रह और और परिग्रही के प्रति अतिशय आदर व्यक्त करते हैं। धर्म को व्यावहारिक जीवन से पृथक् मान लेने का शोचनीय परिणाम यह हुआ है कि कई बड़े बड़े धर्मात्मा समझे जाने वाले व्यक्तियों के भी जीवन का तनिक भी विकास नहीं होता—उनके जीवन में सामान्य जनता की अपेक्षा धर्म की कुछ भी विशेषता दृष्टि गोचर नहीं होती। वास्तव में धर्मात्मा वही है जिसके प्रत्येक जीवन-व्यापार में धर्म की मुख्यता रहती है।

परिग्रह को हमारे मानस में जो प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई है उसका फल अत्यन्त भयानक हुआ है। आज सारे समाज के सामने जो जटिल समस्याएँ हैं उनमें अर्थ की समस्या सबसे अधिक जटिल है। यह समस्या आर्थिक वैषम्य से उत्पन्न हुई है और आर्थिक वैषम्य की उग्रता परिग्रह की प्रतिष्ठा के कारण पैदा हुई है। इस वैषम्य का प्रतीकार तभी संभव है जब हम सूत्रकार के इन शब्दों को हृदयगम करें और इन्हें जीवन में स्थान दें—'यह परिग्रह परिमाण रहित है, शरणदाता नहीं है, इसका अन्त दुःख पूर्ण है, यह अध्रुव है, अनित्य है, क्षणभंगुर है, पाप कर्म का कारण है, सत्पुरुषों द्वारा न करने योग्य है, विनाश का मूल है, अतिशय वध-बन्ध और क्लेश का कारण है, अनन्त संक्लेश का हेतु है।" (पृष्ठ ६१)

इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र जहाँ व्यक्ति के उत्कर्ष में सहायक हो सकता है वहाँ यह अनेक सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में भी अतीव उपयोगी हो सकता है।

अहिंसा और सत्य का निकट सम्बन्ध है। सत्य का आचरण किये बिना अहिंसा का पालन हो ही नहीं सकता। इसीलिए सूत्रकार ने सत्य का बड़ा ही सुन्दर और प्रभावपूर्ण वर्णन किया है। उसको आंशिक उल्लेख करने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता। सूत्रकार कहते हैं—"सत्य सरल है, अकुटिल है, वास्तविक अर्थ का प्रतिपादक है, अविसंवादी है, यथार्थ में मधुर है, प्रत्यक्ष देवता के समान कार्य-साधक है। महा समुद्र में रहा हुआ मनुष्य भी सत्य के प्रभाव से डूबता नहीं है। समुद्र में भूले हुए जहाज और उनके चलाने वाले पानी के भँवरों में भी सत्य के प्रताप से डूबते नहीं हैं, मरते नहीं हैं, किनारे लग जाते हैं। सत्य के प्रभाव से मनुष्य अग्नि का क्षोभ होने पर भी जलता नहीं है। सरल सत्यवादी पुरुष तपे तेल रांगे या शीशे का स्पर्श करे या हथेली पर रखे तो भी जलता नहीं है। सत्यवादी पुरुष पर्वत से पटक देने से भी नहीं मरते हैं। सत्य भगवान् है।

यह सत्य का अपूर्व चमत्कार है। जो महा पुरुष प्रगाढ श्रद्धा रखते हुए सत्य भगवान् की उपासना में अपना सर्वस्व न्योछावर कर देते हैं वही शाश्वत सर्वस्व प्राप्त करते हैं। इस वर्णन में लेश मात्र भी अत्युक्ति नहीं है। भारतीय साहित्य के अनेक प्राचीन और प्रमाणिक आख्यान इसकी वास्तविकता का समर्थन करते हैं। अब भी यदि वैसे साधक हों तो इन चमत्कारों का प्रत्यक्षीकरण होना असम्भव नहीं है।

इसी प्रकार ब्रह्मचर्य आदि विषयों का भी इस सूत्र में विशद और प्रभावशाली वर्णन किया गया है। अतएव धर्म और नीति की जीवन में प्रतिष्ठा करने के प्रत्येक अभिलाषी को प्रश्न व्याकरण सूत्र का अध्ययन और मनन अवश्य करना चाहिये।

श्रमण भगवान् महावीर ने अपने जीवन-काल मे जो उपदेश दिया था उसे उनके शिष्यों ने—गणधरों ने सग्रह किया। वह द्वादशाङ्गी के रूप में परिणत हुआ। द्वादश-अगों मे से प्रश्नव्याकरणसूत्र दसवाँ अग माना जाता है।

इसका नाम प्रश्नव्याकरण क्यों पडा ? यह प्रश्न पाठकों के मन मे सहज ही उत्पन्न हो सकता है क्योंकि, इसमे प्रश्नोत्तर की शैली नहीं है। इस शङ्का का निवारण करने के लिए सस्कृत-टीकाकार श्री अभयदेव लिखते हैं—

"अथ कोऽस्याभिधानस्यार्थ. ? उच्यते प्रश्ना —अगुष्ठादिप्रश्नविद्यास्ताव्याक्रियन्ते–अभिधीयन्तेऽस्मिन्निति प्रश्नव्याकरण । क्वचित् 'प्रश्नव्याकरणदशा,' इति दृश्यते, तत्र प्रश्नाना-विद्याविशेषाणा यानि व्याकरणानि, तेषा प्रतिपादनपरा, दशा–दशाध्ययनप्रतिबद्धा ग्रन्थपद्धतय इति प्रश्नव्याकरणदशा । अयञ्च व्युत्पत्त्यर्थोऽस्य पूर्वकालेऽभूत् । इदानीं त्वाश्रवपञ्चक सवरपञ्चकव्याकृतिरेवेहोपलभ्यते ।"

"अर्थात् प्रश्नव्याकरण का शब्दार्थ क्या है ? कहते हैं—अगुष्ठ आदि प्रश्नविद्याओं को यहाँ प्रश्न कहा गया है और उनका विवरण इस सूत्र मे है अत इसे प्रश्नव्याकरण कहते हैं। कहीं कहीं 'प्रश्नव्याकरणदशा' नाम दृष्टिगोचर होता है। उसका शब्दार्थ है अमुक विद्याओं का विवेचन करने वाला दस अध्ययन वाला ग्रथ। किन्तु यह शब्दार्थ तो पूर्वकाल में था। इस समय तो आश्रवपचक और सवर--पचक का विवेचन ही इसमें उपलब्ध है।"

उपर्युक्त कथन से प्रतीत होता है कि प्रश्नव्याकरण म पहले विविध विद्याओं का वर्णन भी पाया जाता था और इसी कारण इसका 'प्रश्न–व्याकरण' यह सार्थक नाम पड़ा था। किन्तु बाद के आचार्यों ने इस युग के पुरुषों की निर्बलता का खयाल करके वह सब वर्णन हटा दिया है। इस कथन की पुष्टि एक और बात से होती है। प्रश्नव्याकरण

अंग के पदों की संख्या पहले ९,३१,१६,००० थी। ३२ अक्षरों का एक श्लोक और लगभग पन्द्रह करोड़ श्लोकों का एक पद माना जाता है। किन्तु इस समय केवल १२५० श्लोक ही इसमें उपलब्ध हैं। इस प्रकार पूर्वकाल के परिमाण को देखते हुए इस समय का प्रश्नव्याकरण बहुत छोटा है। यह कितने दुर्भाग्य की बात है कि प्राचीन विद्याएं और प्राचीन साहित्य हमारी आँखों से ओझल हो गया है।

फिर भी एक प्रश्न यह उठता है कि प्रश्नव्याकरण सूत्र में यदि विद्याओं का भी वर्णन था तो विद्याओं के साथ आश्रव-संवर का क्या सम्बन्ध है, जिससे इन्हें एक ही ग्रन्थ में निबद्ध करना उचित समझा गया? इस प्रश्न का उत्तर न आचार्य अभयदेव की टीका में ही पाया जाता है और न अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर हुआ है। अतएव यह प्रश्न सिद्धान्तशास्त्र के विशिष्ट अभ्यासी बहुश्रुत विद्वानों के समक्ष उपस्थित है। आशा है वे इसका समाधान करेंगे।

हाँ, यह ध्यान रखना होगा कि आचार्य अभयदेव ने अपनी टीका में जो कुछ कहा वह निर्विवाद एवं सर्वसम्मत कथन नहीं है। तत्त्वार्थ भाष्य के टीकाकार श्री सिद्धसेन गणि का अभिप्राय इनसे भिन्न है। गणि जी अपनी तत्त्वार्थ-टीका में लिखते हैं—

"प्रश्नितस्य जीवादेर्यत्र प्रतिवचनं भगवता दत्तं तत् प्रश्नव्याकरणम्।"

अर्थात् जीव आदि के विषय में किये हुए प्रश्नों का भगवान् ने जिसमें उत्तर दिया है वह प्रश्न व्याकरण है।

इन दोनों कथनों में कौन-सा कथन ठीक है, इस बात की जाँच के लिए यदि दिगम्बर सम्प्रदाय के साहित्य की ओर दृष्टि डाली जाय तो और अधिक उलझन पड़ जाती है। दिगम्बर सम्प्रदाय के राजवार्तिक ग्रंथ में प्रश्न व्याकरण का परिचय देते हुए कहा गया है कि उसमें युक्तियों और हेतुओं द्वारा खण्डन मण्डन किया गया है। इस प्रकार राजवार्तिक के अभिप्राय से प्रश्न व्याकरण सूत्र न्याय-प्रधान जान

पड़ता है और यह कथन उपर्युक्त दोनों कथनों में से किसी की पुष्टि न करता हुआ एक नयी ही बात बतलाता है।* ऐसी दशा में कुछ भी कहना कठिन हो जाता है। अस्तु जो कुछ भी हो, हमारे सौभाग्य से प्रश्न व्याकरण सूत्र जितने भी अंश में हमारे सामने उपलब्ध है वही श्रेयस्कर है और वही हमारे कल्याण में अतीव उपयोगी है।

दीर्घ तपस्वी श्रमण भगवान् महावीर अपने युग के उग्र और समर्थ सुधारक थे। उन्होंने अपने लोकोत्तर उपदेश का वाहन लोक-भाषा को बनाया था आज हमारी भाषा वह नहीं है। अतएव सर्व-साधारण जनता मूल सूत्र ग्रन्थों से लाभ कम उठा सकती है। ऐसी अवस्था में उन्हें बोलचाल की भाषा में अनुवादित करके अधिक-से-अधिक जनता को लाभान्वित करना अतिशय पुण्य कार्य है। भगवान् के वचनामृत का पान कराने से बढ़कर श्रेय सम्भवतः अन्य नहीं है। विद्वान् और सुलेखक श्री केवलमुनि जी महाराज अवश्य ही धन्यवाद के पात्र हैं। जिनकी लेखनी से जनता को भगवद्वाणी के अनुशीलन का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

विनीत,

जैन गुरुकुल, ब्यावर
२७-२-१९३९

शोभाचन्द्र भारिल्ल, न्यायतीर्थ

---

*'प्रश्न व्याकरण सूत्र' के शब्दार्थ सम्बन्धी प्राचीन आचार्यों के जो अभिमत हैं वे परस्पर विरोधी हैं। इनको देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि "समवायांग सूत्र" में निर्देशित इस सूत्र के अध्यायों के अन्तरगत उद्देशकों में अंगुष्ठादि विद्याओं के प्रश्न उत्तर भी होंगे। पर पीछे से उनको निकाल दिया है। विशेष तत्व केवली गम्य।

—अनु०

प्राक्कथन

प्रिय पाठको !

जिस समय मैने प्रश्नव्याकरण सूत्र का अध्ययन किया था उसी समय से मेरे मन मे यह प्रबल आकांक्षा बनी आ रही थी कि प्रस्तुत सूत्र का हिन्दी अनुवाद हो तो क्या ही अच्छा हो ! हालांकि पहले से भी कई अनुवाद मौजूद हैं । परन्तु वे अनुवाद मूल पाठ से साथ बंधे हुए हैं वा वर्तमान की बोलचाल की भाषा में नहीं है जिससे साधारण शिक्षित वर्ग के लिये कुछ कठिन पड़ते हैं । अत मात्र भावग्राही अनुवाद की ही आवश्यकता समझी और यही मुझे अभीष्ट भी था । हर्ष है कि वही चिराभिलषित वस्तु आज पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर रहा हूँ ।

प्रश्नव्याकरण सूत्र जैनागम साहित्य में अपना एक विशेष स्थान रखता है । इसमें हिंसा-अहिंसा असत्य-सत्य अदत्त-दत्त अब्रह्म-ब्रह्मचर्य, परिग्रह-निर्ममत्व आदि विषयों का बड़े सुन्दर ढङ्ग से वर्णन किया है । प्रत्येक विषय की विवेचन शैली अत्युत्तम और हृदय स्पर्शी है । मनन पूर्वक पठन करने से हृदय पटल पर सदाचार की अमिट छाप डालती है जीवन को सात्विक गुणों से ओत प्रोत कर देती है । स्वयं ही हिंसा, असत्य आदि पापाचारों से घृणा पैदा हो जाती है । टूटी हुई आध्यात्मिक जीवन की कड़ियों को सम्यक् ज्ञान से जोड़ देती है । पापों के अनादि कालीन बन्धन से मुक्त कर देती है । अज्ञान के भीषण प्रवाह मे बहते हुए प्राणियों के लिए पावन तरणी है । वर्तमान कालीन वासना-

मय वातावरण मे प्रस्तुत सूत्र का पठन-पाठन अवश्य ही जीवन को पवित्र, स्वच्छ एव समुज्ज्वल बनाने वाला है।

भगवान महावीर का शान्तिप्रद प्रवचन सरल हिन्दी भाषा मे और अन्यान्य भाषाओं मे अनुवादित होकर ससार मे फैले और भव्य प्राणियो का कल्याण करे, इसी सद्भावना को लेकर इसका अनुवाद किया गया है। किसी खास प्रतिष्ठा या पाडित्य प्रदर्शन के उद्देश्य से यह नहीं हुआ है। मै कोई प्राकृत, सस्कृत का विद्वान नहीं हूँ और न हिन्दी ही का विशेषज्ञ हूँ। अत आप मेरी भाषा या अनुवाद शैली को न देख कर मूल भावो की ओर ही लक्ष कीजिये जो कि भगवान् महावीर की ओर से पैतृक सम्पति के रूप मे मिले हैं। उक्त सूत्र के अध्ययन, करने वाले को भावुकता के साथ साथ प्रत्येक शब्द मे अनन्त-अनन्त ज्ञान निधि के दर्शन होंगे।

आगम साहित्य अगाध और महान् हैं। बड़े-बडे दिग्गज विद्वान् भी इसे भली भाँति पार नहीं कर सकते। फिर भला मेरा प्रयास तो अति ही अल्प है। अस्तु इस अनुवाद मे मै कहाँ तक सफल हुआ हू इसका उत्तर मैं तो पाठकों पर ही छोडता हूँ।

आगम साहित्य के अध्ययन मे सबसे बडी कठिनता यह है कि भिन्न भिन्न प्रतियों मे शब्दों के अर्थ भी भिन्न भिन्न प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ यथा (१) अणगिलाएहिं—शब्द के चार अर्थ देखने में आये हैं। (A) वासी आहार (B) अज्ञात कुल के घरों में से आहार लेने वाले (C) जिवारे गिलाण पामे आहार बिना तिवारे आहार करे (D) एक स्मरण नहीं रहा। (२) अचियत—शब्द का अर्थ अप्रतीत कारी किया है। यही शब्द घरों के विषय मे और चद्दर चोलपट्टक आदि के विषय में भी आया है। अब विचारणीय विषय यह है कि चद्दर आदि अप्रतीतकारी कैसे हो सकते हैं? अगर अचियत शब्द का अप्रिय अर्थ करे तो युक्ति युक्त हो सकता है। खैर में कोई आगम साहित्य के रहस्य का मर्मज्ञ

नहीं हूं ना इन शब्दों पर टीका टिप्पणी करूं यह तो मेरी धृष्टता होगी। परन्तु जैन समाज के कर्णधारों से यह प्रार्थना अवश्य है कि सूत्र साहित्य के मूल स्पर्शी अनुवादों की परमावश्यकता है और वह भी सामूहिक रूप से एकत्र होकर।

हमारी प्रिय भाषा प्राकृत के कोष भी सतोष जनक नहीं है। कितने ही शब्द बहुत कुछ खोज करने के बाद भी उनमें प्राप्त नहीं हुए। यथा गायकम्म-गात्र कर्म, अब बताइये ऐसी परिस्थिती में, मेरे जैसा अभ्यासी क्या करे? अतएव पाठकों को यदि कहीं शब्दों के अर्थों में विपरीतता या भावों में कहीं असमानता प्रतीत हो तो इसके लिए क्षमा करें। और कोई लक्ष खींचने वाली अशुद्धि समझें तो सूचित करें ताकि उसका यथोचित परिमार्जन किया जा सके।

अनुवाद का कार्य गत अलवर चातुर्मास में (जहाँ गुरु भ्राता मनोहर व्याख्यानी शांत मूर्ति मुनि श्री रामलाल जी महाराज मैं और प्रिय-व्याख्यानी मोहन मुनि जी साथ थे) ही समाप्त हो गया था। अस्तु यथा प्रसङ्ग जब यह अनुवाद वहाँ स्पेशल आफीसर अजमेर निवासी श्रीमान गुलाबचन्द जी को दिखलाया गया तो उन्होंने सहर्ष अपनी ओर से प्रकाशित करने की प्रार्थना की। परन्तु देहली में वैर्यवान् शास्त्रवारिधि पूज्य श्री खूबचन्द जी म०, गुरुदेव जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमल जी म० की सेवा में रहे हुए मेरे ससारी छोटे भाई मुनि वंशीलाल अस्वस्थ हो गये फलत. मुझे शीघ्र ही यहाँ देहली आ जाना पड़ा, यहाँ परिचर्यादि में इतना व्यस्त रहा कि समयाभाव के कारण अनुवाद को दुबारा सम्यक् प्रकार से अवलोकन भी नहीं कर सका अत. जैसा था वैसा ही अनुवाद काफी विलम्ब के पश्चात् उन्हीं सज्जन की ओर से प्रकाशित हो रहा है।

महावीर भवन, देहली
२५-२-१९३९

मुनि केवलचन्द्र

समर्पण

जननी इस जग में हैं अनेक,
सुत-जन्म-सुयश जो पाती हैं।
आत्मज को धर्म निष्ठ करती,
वे 'मातृ-श्रेष्ठ' कहलाती हैं॥
जग की इस झूठी माया में,
फँसने से तूने बचा लिया।
श्री जैन दिवाकर गुरुवर के,
चरणों में मुझको भेंट किया॥
उपकारों का बोझा मेरे—
सिर पर जो तूने डाला है।
जन्मान्तर में मुझसे उसका
बदला क्या चुकने वाला है? ॥
तव पुनीत सेवा में माता,
करता अनुवाद समर्पित हूँ।
यह सादर भेंट स्वीकार करो,
मैं इसमें ही आनन्दित हूं॥

आपका :—

मुनि केवल

---

*जैन साध्वी श्री ककूदेवी जी महाराज जो मेरी सांसारिक माता हैं उनकी सेवा में।
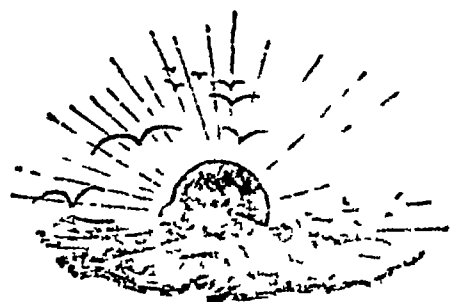
प्रश्न व्याकरण सूत्र

पहला अध्याय

प्रथम आस्रव द्वार—हिंसा

* हे जम्बू ! * आस्रव और सवर का निश्चय कराने वाला द्वादशाङ्ग रूप प्रवचन का सार, महर्षियो-तीर्थंकरों द्वारा जिसका अर्थ भली भाँति कहा गया है ऐसा यह शास्त्र, तत्त्व के निश्चय करने के लिए कहता हू।

प्रवाह की अपेक्षा अथवा नाना जीवों की अपेक्षा अनादि कालीन आस्रव जिनेन्द्र भगवान् ने पाँच प्रकार का कहा है। वह इस प्रकार—(१) हिंसा (२) मृषावाद (३) अदत्तादान (४) अब्रह्मचर्य (५) परिग्रह।

---

* भगवान् महावीर स्वामी के पाचवें गणधर श्रीसुधर्मा स्वामी अपने प्रधान शिष्य जम्बू को सम्बोधन कर कहते हैं।

* जीव रूपी तालाब में कर्म रूपी जल का आना आस्रव कहलाता है और आस्रव का रुक जाना संवर है। प्रस्तुत सूत्र म इन्हीं दोनों तत्वों का विशद वर्णन है।

हिंसा का जो स्वरूप है, उसके जो नाम हैं जिस कारण से हिंसा-कर्म किया जाता है, उसका जो फल होता है और उसे जो पापी जीव करते हैं, उसे सुनो।

हिंसा का स्वरूपः—

जिन भगवान् ने हिंसा का यह स्वरूप कहा है। यह स्वरूप नित्य है—कभी बदलना नहीं है।

हिंसा सदा पाप कर्म के बंध का कारण है, अत्यन्त पापी पुरुषों द्वारा किये जाने के कारण चंड है, रौद्र—भयंकर है, क्षुद्र—द्रोहकारी है, साहसिक—हिताहित का विचार किये बिना की जाने वाली है, अनार्य—म्लेच्छों द्वारा विहित है, निर्घृण—पाप के प्रति होने वाली घृणा से रहित है, क्रूर है, महान् भयकारी है, दूसरों को भय उत्पन्न करने वाली है, मारणान्तिक भय उत्पन्न करने वाली है, डराने वाली है, त्रास जनक है, अन्याय-रूप है, चित्त में उद्वेग पैदा करती है, परलोक आदि की अपेक्षा रहित है, धर्म से बाहर है, स्नेह शून्य है, करुणा-शून्य है, नरक में पहुँचाने वाली है, मोह और महाभयकारी है, मृत्यु के कारण प्राणियों में दीनता उत्पन्न करती है।

हिंसा के नामः—

हिंसा के गुण निष्पन्न—यथार्थ तीस नाम हैं—

(१) प्राणवध—प्राणियों का घात करना।
(२) जीव को शरीर से पृथक् कर देना।
(३) अविश्रम्भ—अविश्वास का कारण।
(४) हिंस्यविहिंसा—जीवों का विशेष रूप से घात करना।
(५) अकृत्य—न करने योग्य।
(६) घातना—घात करना।
(७) मारणा—मारना।

(८) वध—वध करना—मार डालना।
(९) उपद्रवण—जीवों का सताना।
(१०) त्रिपातना—मन, वचन, काय अथवा देह, आयु और इन्द्रिय इन तीन से रहित करना।
(११) आरम्भ—समारम्भ।
(१२) आयुकर्म का उपद्रव करना—आयु का भेदना, आयु को गलाना आयु को सवर्त करना सक्षिप्त करना।
(१३) मृत्यु।
(१४) असयम।
(१५) कटकमर्दन—सेना आदि द्वारा जीवों का मर्दन करना।
(१६) व्युपरमण—जीवों को प्राणों से जुदा करना।
(१७) परभव में पहुँचाना।
(१८) कर्त्ता को दुर्गति मे पहुँचाने वाली।
(१९) पापकोप—पाप प्रवृत्तियों को कुपित करने वाली।
(२०) पाप लोभ—पाप कार्य मे आसक्त करने वाली।
(२१) छविच्छेद—शरीर को छेदना।
(२२) जीवितान्तकरण—जीवन का अन्त करने वाली।
(२३) भयकर।
(२४) ऋणकर—पापजनक।
(२५) वज्र-सा (वर्ज)—वज्रवत् कठोर अथवा विवेकी पुरुषों द्वारा त्याज्य।
(२६) परितापन आस्रव—दु.ख को लाने वाली।
(२७) विनाश।
(२८) निर्यापना—जीव से रहित करना।
(२९) लोपना—प्राणों का लोप करना।
(३०) गुणविराधना—हिंसक के चारित्र रूप गुण का घात करने वाली।

हिंसा के उल्लिखित तीस नाम हैं। यह तीसों कटुक फल देने वाले हैं।

हिंसा करने के प्रकार :—

इस भयकर और नाना तरह की हिंसा को पापी असयमी अविरत, अनुपशान्त—परिणाम वाले, दूसरों को दुःख उत्पन्न करने में आसक्त, त्रस और स्थावर जीवों के द्वेषी जीव करते हैं। प्राणवध किस प्रकार करते हैं? इस प्रकार—

जलचर—पाठीन (मत्स्य), तिमि और तिमिंगल (महामत्स्य), अन्य अनेक प्रकार के मत्स्य (मछली आदि) तरह तरह के मेंढक, दो प्रकार के कछुए, नक्र (एक प्रकार का मगर) मकर, दो तरह के ग्राह, दिलि, वेष्टक, मडुक सीमाकार और पुलक ये पांच प्रकार के ग्राह, सुसमार आदि जलचर जीवों को हनन करते हैं।

स्थलचर—मृग, रुरु, (मृग-विशेष), शरभ (अष्टापद), चमरी-गाय, साभर, मेढा, खरगोश, प्रशय (एक जगली जानवर) बैल-गाय, रोहित (एक चौपाया), घोड़ा, हाथी, गधा ऊँट गेंडा बदर, रोझ, भेडिया, शृगाल, कोल (चूहा सरीखा एक प्राणी) बिलाव, बड़ा सूअर, श्रीकन्दलक (एकखुरा जानवर), आवर्त्त (एक खुर वाला जानवर), लोमड़ी, गोकर्ण (दोखुरा चौपाया), हिरन भैंसा, वाघ बकरा, चीता, श्वान, तरच्छ, अच्छ, भल्ल और शार्दूल (ये चारों व्याघ्र के भेद हैं), सिंह, चित्तल (नख वाला जानवर) इत्यादि चतुष्पद जीवों को हनन करते हैं।

उरपर—अजगर, गोणस (बिना फन के साप), दृष्टिविष साँप, फन न फैलाने वाले साँप, मुकुली साँप, काकोदर साँप, दर्वीकर साँप, आसा-लिक साँप, * महोरग इत्यादि अनेक प्रकार के उरपर जीवों की हिंसा करते हैं।

---

* महोरग मनुष्य क्षेत्र से बाहर होता है—अभय देव।

भुजपर—क्षीरल, शरम्ब, सेह, सेल्लक, गोधा, चूहा, नेवला, गिर-गिट, साही, मुगुंस, गिलहरी, वातोत्पत्तिका, छिपकली, इत्यादि सरिसृप जीवों का घात करते हैं।

खेचर—हंस, बगुला, बलाका (एक प्रकार का हंस), सारस, आडासेती (आडी), कुलल, वंजुल, पारिप्लव, कीव, शकुन, पपीहा, सफेद पंखों वाले हंस, धार्तराष्ट्र (काली चोंच और काले पैर वाले हंस), भास, कुलीकोस, क्रौंच, दकतुण्ड, ढेणिकालक, शूचीमुख, कपिल, पिंग-लाक्षक, कारंड, चकवा, कुरर, गरुड़, पिंगुल, शुक मयूर, सारिका (मैना), नन्दीमुख, नन्दमानक, कोरङ्क, भृङ्गारक, कोणालग, जीवजीवक तीतर, वर्तक, लाव, कपिंजल, कबूतर परेवा, चिडिया, ढिंक, मुर्गा, वेसर, कलापहीन मोर, चकोर, ह्रदपुण्डरीक करक (शालक), वीर-ल्लश्येन (सीचाणा) काक विहङ्ग मेनाशित, चाष, वग्गुलि चर्मा-स्थिल, विततपक्षी, इत्यादि खेचर प्राणियों का घात करते हैं।

अत्यन्त संक्लिष्ट परिणाम वाले लोग पूर्वोक्त जलचर, स्थलचर और खेचर जीवों को, पंचेन्द्रिय पशुओं को, बेचारे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय विविध प्रकार के जीवों को—जिन्हें जीवन प्रिय है और जो मृत्यु के दुःख को नहीं चाहते—हनन करते हैं। हनन करने के अनेक कारण हैं। जैसे—

हिंसा के कारण—चमडी, चर्बी, मांस, मेद, रक्त, यकृत, फैफडा, भेजा (सिर की खोपडी), हृदय आंत, पित्त, फोफस, और दांतों के लिए, हड्डी, मज्जा, नख, नेत्र, कान, नाक, नाडी, सींग, दाढ, पंख, विष, हाथी दांत, तथा बालों के लिए हिंसा करते हैं।

मधु-रस के लोलुपी लोग भ्रमर, मधुकरी आदि चौइन्द्रिय प्राणियो की हिंसा करते हैं, शरीर और वस्त्र आदि उपकरणों के लिए तीन-इन्द्रिय जीवों का घात करते हैं, तथा वस्त्र एवं अन्य सामान को सुन्दर बनाने के लिये बेचारे दीन हीन दो-इन्द्रिय जीवों का हनन करते हैं,

इसी प्रकार के अन्यान्य सैकड़ों कारणों से अज्ञानी लोग त्रस प्राणियों का घात करते हैं।

इसके अतिरिक्त अन्यान्य स्थावर जीवों को, त्रस जीवों को तथा त्रस जीवों पर आश्रित स्थावरो को और स्थावर जीवों पर आश्रित त्रस जीवों को हनन करते हैं। वे जीव छोटे-छोटे शरीर के धारी हैं, त्राण रहित हैं, अशरण हैं, अनाथ हैं, बन्धु-बान्धव रहित हैं, कर्म रूपी बेड़ियो से बधे हुए हैं। अशुभ परिणाम वाले मद बुद्धि-मिथ्यात्वी जन उन्हें जान नहीं पाते हैं। ये जीव कोई पृथ्वी काय के हैं, कोई पृथ्वी काय पर आश्रित हैं, कोई जलकायिक हैं कोई जल मे रहते हैं, कोई अग्नि कायिक, कोई वायुकायिक, कोई वनस्पतिकायिक हैं और कोई-कोई इनके आश्रित त्रस हैं। पृथ्वी आदि का आहार करने वाले हैं तथा उन्हीं के समान वर्ण, गध, रस, स्पर्श और शरीर के धारक हैं। उनमे कोई आँखों से दिखाई देता और कोई नहीं दिखाई देता। ऐसे असख्यात त्रस जीव हैं। इनके अतिरिक्त सूक्ष्म, बादर, प्रत्येक, साधारण इस प्रकार अनन्त स्थावर काय के जीवो का घात करते हैं। ये जीव (स्थावर) विवेक रहित हैं और (त्रस) सुख दुख को जानते हैं। इन सब की वे लोग विविध कारणों से हिंसा करते हैं। वे कारण क्या हैं?

खेती, पुष्करिणी, बावडी, क्यारी, कूप, सर, तड़ाग, दीवाल का चुनना, वेदिका, खाई, बगीचा, विहार, स्तूप, कोट, द्वार, फाटक, अटारी, शहर के बीच का मार्ग—चरिका (सड़क), पुल, सक्रम—उतरने का मार्ग, महल, अन्य मकानात, भवन, घर, झोंपड़ी, पहाड़ पर के मकान, दुकान, चैत्य (प्रतिमा), देवकुल, चित्रसभा, प्याऊ देवायतन, तापस आदि के मठ, भौंहरा, मडप आदि के लिए, तथा भाति-भाति के भाजनों और भाण्डोपकरणों के लिए मद बुद्धि वाले लोग पृथ्वीकाय की हिंसा करते हैं।

स्नान, पान, भोजन, कपड़ों को धोना, शौच आदि कारणों से जलकाय की हिंसा करते हैं।

पकाना, पकवाना, जलाना, उजाला करना या बुझाना आदि कारणों से तेजस्काय की हिंसा करते हैं।

सूपा, पंखा, ताड़पंख, मयूरपंख, मुख, हाथ, पत्ता, वस्त्र आदि के द्वारा वायुकाय की हिंसा करते हैं।

घर, हथियार, भक्ष्य भोजन, पलंग, आसन, बाजौठ, मूसल, ऊखल, तत (वीणा आदि) वितत (पटह आदि), बाजे जहाज, गाड़ी, आदि मंडप तरह तरह के भवन तोरण, मन्दिर, देवकुल, खिड़की, अर्धचन्द्र (एक प्रकार की सीढ़ी), छज्जा, चन्द्रशाला (मकान के ऊपर की शाला), वेदी, नसैनी, नाव, चंगेरी (टोकरी), खूंटी, मेटी, काठ का टटा, गाड़ी की छत प्याऊ का मकान, मठ, सुगंधी पदार्थ, पुष्प माला, अंगविलेप, कपड़ा, जूआ, हल, मतिक (काठ की पास), कुलिक (एक प्रकार का हल), रथ, शिविका (पालकी), गाड़ी, यान, युग्य, अटारी, चरिका, द्वार, फाटक, आगल, रहट आदि यंत्र, शूलक (कील), लाठी मुसंढी, शतघ्नी इनके अतिरिक्त बहुत से अन्य हथियार, तथा घर का सामान, इनके लिए तथा इनके सिवा अन्य सैकड़ों कारणों से अत्यन्त मूढ, दारुण मति वाले लोग पूर्वोक्त तथा अनुक्त अनेक निर्बल प्राणियों का घात करते हैं। कोई क्रोध से, कोई मान से, कोई माया से कोई लोभ से, हास्य से, रति से, अरति से, शोक से, वेदिक अनुष्ठान के लिए, जीवन के लिए, कामभोग के लिए, धर्म के लिए, स्वाधीन होकर, पराधीन होकर किसी प्रयोजन के लिए बिना ही प्रयोजन, त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा करते हैं। मंद बुद्धि लोग स्ववश होकर घात करते हैं, परवश होकर घात करते हैं, स्ववश और परवश—दोनों प्रकार से घात करते हैं, सार्थक हिंसा करते हैं, निरर्थक हिंसा करते हैं, सार्थक निरर्थक—दोनों प्रकार से हिंसा करते

हैं। इसी प्रकार हास्य से, वैर से और रति के आधीन होकर हिंसा करते हैं, हास्य वैर और रति-इन तीनों के आधीन होकर हिंसा करते हैं क्रोध से हिंसा करते हैं, लोभ से हिंसा करते हैं और अज्ञान से हिंसा करते हैं, क्रोध, लोभ और अज्ञान—तीनों से हिंसा करते हैं।

अर्थ (धन) के लिये हिसा करते हैं, धर्म के लिये हिंसा करते हैं काम के लिये हिंसा करते हैं, तथा धन, धर्म और काम—इन तीनों के लिये हिंसा करते हैं। वे हिंसक कौन हैं ?

हिंसक—क्रूर कर्म करने वाले सुअर के शिकारी धीवर, चिडीमार व्याध, हिरन वगैरह को जाल में फँसाने वाले वागुरिक चीता तथा मृग आदि को फँसाने के लिये बंधन का प्रयोग करने वाले डोंगी पर चढ-कर मछलियाँ पकडने वाले मच्छी पकडने का काटा और जाल डालने वाले, बाज के द्वारा पक्षियों को पकड़ने वाले, लोहे या घास की वागुरा कृत्रिम बकरी—जो चीते आदि को पकडने के लिये रक्खी जाती हैं, इत्यादि का उपयोग करने वाले चांडाल, सेवक पाश आदि हाथ में (अधिकार में) रखने वाले, वनचर (कोल भील आदि), लुब्धक मधु इकट्ठा करने वाले पक्षी के बच्चो का घात करने वाले, हरिणी का (हरिण पकडने के लिये) पोपण करने वाले बड़े-बड़े भृगीपोषक, सरोवर, द्रह, बावडी तालाब, तलैया को (शख, सीप, मच्छली की प्राप्ति के निमित्त) उलीचने वाले मर्दन करने वाले प्रवाह को रोकने वाले, जलाशय को सुखाने वाले, कालकूट विप तथा साधारण विप देने वाले, उगे हुए घास वाले खेतो में निर्दयता से दावानल लगाने वाले, ये सब क्रूर कर्म के करने वाले तथा बहुत से म्लेच्छ जातियों के लोग हिंसा करते हैं। वे म्लेच्छ जातीय कौन हैं ?

म्लेच्छों का विवरण:—शक, यवन, शबर बर्बर, काय, मुरुण्ड, उद, भडग, तित्त, पक्कणिक, कुलाक्ष, गौड, सिंहल, पारस, क्रौंच, अन्ध, द्रविड, बिल्वल, पुलिंद, अरोस, डोंब, पोक्कट, गंधहारक,

(गाधार), बहलीक, जल्ल, रोम, माम, बकुश, मलय, चुचुक, चूलिक, कोंकण, मेद, पह्लव, मालव, महुर, अभाषिक, अणक्क, चीन, ल्हासिक, खस, खासिक, नेहर, महाराष्ट्र, मुष्टिक, अरब, डोंबिलक, कुहण, केकय, हूण, रोमक, रुरु, मरुक, और चिलात, इन देशों के निवासी म्लेच्छ और पाप बुद्धि वाले हैं।

ये पापी जीव, जलचर, स्थलचर, सिंहादि—उरग (सर्प आदि), खेचर (पक्षी) सडासी जैसा मुँह वाले पक्षी आदि का घात करके जीविका चलाने वाले, सज्ञी-असज्ञी पर्याप्त जीवों की अशुभ लेश्या और अशुभ परिणाम से हिंसा करते हैं। ये लोग पापी हैं, पाप करने का निश्चय किये बैठे हैं, पाप में ही रुचि रखते हैं, हिंसा में आनन्द मानने वाले, हिंसा का अनुष्ठान करने वाले और हिंसा की कथा में सुखी होने वाले हैं। उन्हें तरह-तरह से हिंसा करके ही सतोष होता है।

हिंसा के फल:—ये अज्ञानी लोग उस पाप के फल से अनभिज्ञ रहकर उसके फल स्वरूप अत्यत भयङ्कर, निरन्तर वेदना वाली, लम्बे समय तक तीव्र दुःख और सकटों से व्याप्त नरक योनि तथा तिर्यञ्च योनि को बढाते हैं।

नरक गति—ये पापी प्राणी अपनी आयु पूरी करके अतीव अशुभ कर्मों के योग से नरक में उत्पन्न होते हैं। नरक में वज्र की दीवारें हैं, पोले हैं, किसी प्रकार का साध या द्वार नहीं है, वहाँ की ज़मीन कठोर है, स्पर्श कर्कश है, वहाँ उत्पन्न होने के स्थान विषम—ऊँचे नीचे हैं। नरक बहुत उष्ण, सदा जलते हुए, बदबूदार और उद्वेगजनक हैं। देखने में वीभत्स हैं। कहीं कहीं हिम के पटल के समान शीतल हैं, काले हैं, भयकर हैं, गहन हैं, और उन्हें देखते ही रोमाच हो आता है। उनमें ज़रा भी रमणीयता नहीं है। वहा असाध्य व्याधि, रोग और जरा से पीडित नारकी रहते हैं। वहाँ सदा घोर अँधेरा छाया रहता है। वे भयावने हैं। वहाँ ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र और तारे नहीं हैं। मेद, चर्बी,

माँस का पटल, पीव, रक्त आदि मिले चिकने और सडे, गले कीचड़ से भरे हुए हैं। जलती हुई अग्नि एवं भूमुर के समान अग्नि जैसी तथा तलवार, छुरा, करौत, आदि की तीखी धार के समान और बिच्छू के डंक के समान नरकों का स्पर्श है। वह स्पर्श एक दम असह्य है। ऐसी नरक में पापी जीव अत्राण और अशरण होकर दारुण दुःखों का भोग करता है। वहाँ वेदनाओं से पल भर भी छुटकारा नहीं मिलता। नरक परमाधामी देवों से व्याप्त हैं।

पापी जीव ऐसे भयानक नरक में जाकर वैक्रिय शरीर प्राप्त करते हैं। उनका शरीर बेहूदा, देखने में वीभत्स, भयावना, हड्डी, स्नायु नाखून एवं रोम से रहित, अशुभ और दुःखों को सहन करने वाला होता है।

इसके अनन्तर वे नारकी जीव पर्याप्त अवस्था में आते हैं। पर्याप्त अवस्था में आने पर पाँचों इन्द्रियों द्वारा वेदनाओं को भोगते हैं। वे वेदनाएँ अशुभ हैं, एकदम तीव्रतम हैं, सबल हैं, शरीर के सब अंगोपांगों में होती हैं, चरम सीमा को प्राप्त हैं, तीखी, कठोर और डरावनी हैं। वे वेदनाएँ कौनसी हैं?

नरक में लोहे की बडी-सी कढाई में रांधना, पकाना, तलना, भाड में भूजना, लोहे की कढाई में उकालना, बलिदान देना, कूटना, शाल्मली वृक्ष के कांटों की तीखी-तीखी नोंक पर चलाना, फाड़ना, चीरना, हाथ और माथे को पीठ पर बांध देना, सैकडों लाठियों से ताडना करना, जबर्दस्ती गले को पेड की शाखाआदि से बांध देना, शूल की नोंक से भेदना, आज्ञा देकर धोखा देना, अपमान और निन्दा करने वाली बातें सुनना, 'इन पापियों को अपनी पापमय करतूतों का फल भोगने दो' ऐसी ऐसी बातें सुनना, वध्य के सैकडों दुःखों को भोगना, इत्यादि वेदनाएँ ये पापी जीव भुगतते हैं।

ये पाप कर्म करने वाले जीव पहले किये हुए कर्मों के संचय के कारण संताप पाते हैं, तीव्र अग्नि के समान नरक रूपी अग्नि में जलते

हैं और प्रगाढ दु:ख रूप, महा भयकारी, कठोर, असातावेदनीय कर्म के उदय में होने वाली शारीरिक और मानसिक दो प्रकार की वेदनाओं को वेदते हैं। ये बँधी हुई आयु के अनुसार बहुत से पल्योपम और सागरोपम दीनतापूर्वक व्यतीत करते हैं—अर्थात् बीच में उनकी मृत्यु नहीं होती। परमाधामी असुरों के द्वारा सताये हुए भयभीत नारकी इस प्रकार चिल्लाते हैं—'हे शक्तिशाली! हे स्वामी! हे भ्राता! हे बाप! हे तात! हे जयवन्त! मुझे छोड दो। म मर रहा हू। मैं दुर्बल हूँ, व्याधि से पीड़ित हू। अब मत सताओ। मुझ पर इस तरह भयङ्कर और निर्दयतापूर्वक प्रहार न करो। मुहूर्त भर मुझे सास ले लेने दो। दया करो। रोष न करो। मैं जरा विश्राम लेता हूँ। मेरी गर्दन छोड दो। हाय! म मर रहा हूँ। मुझे बड़ी जोर की प्यास लगी है। जरा जल पिला दो।' नारकी जब इस प्रकार बिलबिलाते हैं तो परमाधामी कहते हैं—'ले यह निर्मल और शीतल जल है।' ऐसा कह कर वे उसे पकड लेते हैं और कलश द्वारा उसकी अजलि (खोबा) में गरमागरम शीशा उँडेल देते हैं। यह देख कर नारकीयों के अगोपाङ्ग काप उठते हैं। उनके आँसू बहने लगते हैं—आखे आसुओं से तर हो जाती हैं। वे दीनतापूर्वक कहने लगते हैं—'बस, बस अब हमारी प्यास बुझ गई है।' फिर इधर-उधर देखकर अत्राण, अशरण, अनाथ, आत्मीय जनों से रहित, बन्धुविहीन वे नारकी जीव भयभीत होकर मृग की भाँति भागने लगते हैं। परन्तु असुर लोग जबर्दस्ती उन्हें पकड लेते हैं और निर्दयता के साथ लोहे के दण्डों से उनका मुँह उघाड कर उकलते हुए शीशे के रस को मुँह में उडेल देते हैं। उन्हें इस प्रकार जला हुआ देखकर कोई कोई परमाधामी हँसते हैं। वे नारकी जीव उससे जल कर भयङ्कर विलाप करते हैं, विकृत स्वर से रोते हैं और कबूतर की तरह भरे हुए कठ से चिल्लाते हैं। इस प्रकार वे प्रलाप करते हैं, विलाप करते हैं, करुण वचन बोलते हैं, रोते-चिल्लाते और गिडगिडाते हैं। नरक इनके विलाप

मे और वध-बन्धन आदि के शब्दों से व्याप्त रहता है। तथा परमाधामियों की तर्जना से, अव्यक्त वचनों से, कोप मे, जोर से बोलने से, "पकड़ो इसको, कुचलो इसे, मारो इसे, छेद डालो, भेद डालो, फाड़ डालो, फैंक दो, आँख का गोलक आदि निकालो, इसे काट डालो, इस की नाक वगैरह विकृत कर दो, फिर हनो, खूब हनो, मुँह में शीशा भर दो, खूब भर दो, इधर घसीट लाओ, उधर घसीट ले जाओ, अब क्यों जबान नहीं खोलता है, अपने दुष्ट और पाप कर्मों को याद करो।" परमाधामियों के इस प्रकार के शब्दों प्रति शब्दों मे नरक मे कोलाहल मचा रहता है। जैसे किसी बड़े नगर में आग लगने से होहल्ला होता है उसी प्रकार यातनायें भोगने वाले नारकियों के अनिष्ट शब्दों से काय-काय मची रहती है। वे यातनायें क्या हैं?

परमाधामी देव नारकियों को तलवार की धार के समान पत्तों वाले वन मे डाभ के वन मे नुकीले पत्थरों वाले मैदान मे, ऊपर की ओर नोक वाली सुइयों की जमीन मे, खार (क्षार) वाली बावडियों मे, कड़कड़ाते हुए शीशा आदि मे भरी हुई वैतरणी नदी मे, कदम्ब के फूल के समान रेतीली भूमि मे, और जलती हुई गुफाओं में फेंक देते हैं। अत्यन्त उष्ण, काटे वाले और मुश्किल से चलने वाले रथ मे, बैलों की भाँति जोत देते हैं तथा तपे हुए लोहमय मार्ग में चलाते हैं।

इसके अतिरिक्त विविध प्रकार के हथियारों से उन्हें मारते हैं। वे हथियार यह हैं—मुद्गर, मुसुंढि, करवत, त्रिशूल, हल, गदा, मूसल, चक्र, कुन्त, तोमर (एक प्रकार का बाण), शूली, लकड़ी, भिंडिमाल (एक शस्त्र), भाला, पट्टिस, चमड़े से मढ़ा हुआ पत्थर, द्रुघण (एक-तरह का मुद्गर) मुट्ठी बराबर पत्थर, तलवार, असिखेटक, धनुष, लोहे का बाण, कणक (एक तरह का बाण), कतरनी, बसूला, फरसा, इत्यादि तीखी अनी वाले, चमकते हुए अशुभ विक्रिया से बनाये हुए

सैकड़ों हथियारों से नारकी जीव तीव्र वैर को बाँधे हुए परस्पर एक दूसरे को मार कर वेदना उत्पन्न करते है।

कोई-कोई नारकी दूसरे नारकी को मुद्गरों के प्रहार से चूर-चूर कर डालते हैं, कोई मुसु ढि का प्रहार करके देह को तोड फोड़ देते हैं—मथ देते हैं, कोई-कोई यन्त्र मे पील डालते हैं, तडफते हुए को काट देते हैं, कोई चमड़ी उधेड़ लेते हैं, कान होठ और नाक को जड़ से काट डालते हैं, हाथ पैर सफा कर देते हैं, कोई तलवार, करवत, तीखे भाले और परशु के प्रहारों से नारकी के शरीर को काटते हैं, वसूले से आगोपाग को छील देते हैं। कड़कड़ाते हुए अत्यन्त तप्तक्षार से शरीर को जलाते हैं। भालों की नोंक से उनका सारा शरीर भिदकर चिंदी चिंदी होजाता है, वे वेदना के मारे जमीन पर लोटने लगते हैं। उनके आगोपाग सूज जाते हैं।

जब नारकी जीव जमीन पर लोटते हैं तो भेडिया, कुत्ता, सियार, कौवा, बिलाव, शरभ, चित्रक, व्याघ्र शार्दूल, सिह आदि मदोन्मत्त, तथा भूखे—सदा से भूखे, भयङ्कर, चिल्लाते हुए जानवर आक्रमण करते हैं और नारकी जीवों को अपनी मजबूत दाढों से खूब काटते हैं और इधर-उधर खेंचते हैं। वे उनके ऊर्ध्व देह को अपने तेज नाखूनों से फाड़ डालते हैं। उनके शरीर के जोड (सधियाँ) ढीले पड जाते हैं और अग भग हो जाता है। कक, कुरट, गिद्ध घोर कष्ट पहूँचाने वाले कौवे, कर्कश निश्चल और मज़बूत नाखुनों से तथा लोहमयी चोंचो से, ऊपर से उतर कर निर्दयता पूर्वक अपने पखों से पीड़ा पहुचाते हैं, नखो से जीभ और आँखें निकाल लेते है। इससे उनका वदन अत्यन्त विकृत हो जाता है। उस समय वे नारकी जीव चिल्लाते हैं, ऊपर उछलते हैं, नीचे गिरते हैं, इधर-उधर भागते हैं और पूर्व कर्मों का फल भोगते हैं। वे पश्चात्ताप से जलते हुए पहले किये हुए पाप कर्मों की निन्दा करते हैं और रत्नप्रभा आदि नरकों मे अत्यन्त असह्य

दु.खों को भोगकर आयु का क्षय होने पर वहाँ से निकलते हैं। और वहा से निकल कर अधिकांश नारकी तिर्यञ्च गति मे उत्पन्न होते हैं। यह तिर्यञ्च गति भी अत्यन्त दु खमय है, बड़ी दारुण है। उसमें जन्म, मरण, जरा, व्याधि रहट (अरहट) की भांति पुन पुन. भोगनी पड़ती हैं। उसम जलचर स्थलचर नभचर जीव परस्पर एक दूसरे के प्राणो का नाश करते हैं। इस गति के दु ख ससार मे प्रत्यक्ष हैं। इन दु खों को बेचारे हिंसक जीव बहुत समय तक भुगतते हैं। उन्हें ठंड, गर्मी, प्यास, भूख की वेदना सहनी पडती है। बिना सार-सभाल के अटवी मे जन्म लेना पडता है। सदा भय से उद्विग्न रहना पड़ता है। डर के मारे नींद नहीं ले पाते हैं। वध बधन ताडन. दागने, गड्ढे में गिरने, हड्डियाँ तोडने, नाथने. मारने जलाने. अगोपांगो के काटने, जबर्दस्ती काम मे लाने कोडा अकुश आर आदि को मारने—चुभाने और सज़ा भुगतने आदि की वेदनाएँ सहनी पड़ती हैं। बोझा लादना, माता पिता का विछोह सहना. नाक-कान के छेदों द्वारा बँधना शस्त्र. अग्नि और विष के द्वारा घात होना गले या सींगों के आलबन—कटने से मरना, कांटे या जाल से (मछलियों वगैरह को) पानी से बाहर निकालना सिकना, छिदना, जीवन पर्यन्त बधन में रहना, पींजरे मे बन्द रहना, अपने समूह मे से बिछुडना, हवा भरवाना दुहाना, गले में ठेगुर डलवाना, बाडे मे बन्द रहना. कीचड भरे पानी में मज्जन करना, जल मे जबर्दस्ती घुसना, गहरे गडहे में गिर कर अग भग होना, ऊँची जगह से नीचे गिरना, दावानल की ज्वाला मे जलना, इस प्रकार के सैकडों दु खों से सतप्त. नरक से निकलते हुए पापी जीव प्रमाद, राग, द्वेष से उपार्जन किए हुए. अत्यन्त कठोर दुख देने वाले कर्मों के शेष रहने से तिर्यञ्च पचेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं।

भ्रमर, मच्छर, मक्खी आदि चौइन्द्रिय के नव लाख कुल-कोटि में अमुक-अमुक स्थलों पर जन्म-मरण को भोगते हुए सख्यात काल तक

भ्रमण करते हैं और स्पर्शन, रसना, घ्राण तथा चक्षु इन्द्रिय से युक्त होकर नरक के समान तीव्र दुःखों के पात्र बनते हैं। इसी प्रकार कुथवा, कीड़ी, दीमक, आदि तीन-इन्द्रिय वालों में आठ लाख कुल-कोटि में अमुक-अमुक जगह जन्म-मरण की वेदना भोगते हुए संख्यात काल तक भटकते हैं और नरक के समान तीव्र दुःखों के पात्र बनते हैं। ये जीव स्पर्शन, रसना और घ्राण से युक्त होते हैं।

इसी प्रकार गिंडोला जोंक कृमि, अक्ष (कौड़ी का जीव) आदि दो इन्द्रिय वाले जीवों के सात लाख कुलकोटि में जगह-जगह उत्पन्न होकर नारकियों के समान तीव्र दुःख के पात्र बनकर जन्म-मरण भोगते हुए संख्यात काल व्यतीत करते हैं। ये जीव स्पर्शन और रसना इन्द्रियों से युक्त होते हैं। फिर हिंसक जीव एकेन्द्रियपन को प्राप्त होकर पृथ्वी जल अग्नि वायु और वनस्पति, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर (होते हैं)। प्रत्येक शरीरधारी होकर असंख्यात काल तक भ्रमण करते हैं। अनन्त काय में अनन्त काल तक भ्रमण करते हैं। यह जीव स्पर्शेन्द्रिय से युक्त हो दुःख के अनिष्ट समुदाय को पुनः-पुनः पाते हैं। और अत्याधिक उत्पत्ति वृक्षों में होती है।

कुदाली से खोदना, हल से विदारना आदि पृथ्वी और वनस्पति-काय के दुःख हैं। तथा विलोडना क्षुभित होना, अवरोध होना आदि जलकाय के दुःख हैं। अग्नि और वायु का आपस में संघर्ष होना, एक दूसरे को परस्पर हनन करना, मारना, विराधन करना आदि अग्निकाय और वायुकाय को दुःख भोगने पडते हैं। इस प्रकार इन एकेन्द्रिय जीवों को बिना कामना के, बिना प्रयोजन—दूसरों के द्वारा दुःख सहने पड़ते हैं।

दूसरों के प्रयोजन के लिए भी उन्हें दुःख भोगने पड़ते हैं। जैसे—पशुओं और दासों के लिए, औषधि-आहार के लिए, (वनस्पति को) उखाड़ते हैं, उधेडते हैं, रांधते हैं, चूरा चूरा करते हैं, पीसते हैं, कूटते हैं,

सेकते हैं, छानते हैं, उसेते हैं तथा वे स्वय सडते हैं, टूटते हैं, उन्हें तोडते हैं, काटते हैं, छीलते हैं, पत्ते आदि जुदा करते हैं और अग्नि में जलाते हैं।

इस प्रकार हिंसा में अनुराग रखने वाले जीव भव-परम्परा में दुःखों को भोगते हुए अनन्त काल तक भयानक ससार में परिभ्रमण करते हैं।

जो हिंसक जीव किसी प्रकार नरक से निकल कर मनुष्य हो गये हैं वे पापी जीव प्राय विकृत और विकल रूप वाले दृष्टिगोचर होते हैं। वे कुबड़े टेढ़े-मेढे शरीर वाले, बौने, बहिरे, भैंड़े, टोंटे लॅगड़े, विकलांग, गूंगे, बौरे, अन्धे, काने, खराब आँखों वाले, कोढ आदि व्याधियों तथा ज्वर आदि रोगों से पीडित अल्पायु वाले, शस्त्र से मारे जाने वाले, मूर्ख, बुरे लक्षणों से भरे देहवाले, दुर्बल, बेढङ्गी आकृति वाले, कुरूप, कृपण, हीन, हीनसत्त्व, सदा सुख से हीन, अशुभ दुःख भोगने वाले होते हैं।

हिंसक जीवों के कर्म बाकी रह जाते हैं तो वे पापी नरक, तिर्यंच, और कुमनुष्यों की योनि में भटकते हुए अनन्त दु.ख पाते हैं।

हिंसा का यह फल है। यह हिंसा का फल अल्पसुख, बहुत दु.ख वाला है, महा भयङ्कर है, अत्यन्त कर्म बधाने वाला है, दारुण है, कठोर है, तीक्ष्ण है, असाता रूप है, प्राणी इससे हजारों वर्षों में कठिनाई से छुटकारा पाता है। इससे फल को भोगे बिना छुटकारा नहीं मिल सकता।

हिंसा का यह फल ज्ञात कुलनन्दन, महात्मा रागद्वेष विजेता, वीर-वर—महावीर ने कहा है। यह हिंसा चड है, रुद्र है, अनार्य लोगों द्वारा आचरित है, घृणाहीन है, नृशस है, महाभयकारी है, भय का कारण है, भीषण है, त्रासजनक है, अन्याय है, उद्वेगकारक है, पर प्राणियों की अपेक्षा से रहित है, अधर्म है, स्नेह-हीन है, दया-हीन है, नरक में ले जाने वाली है, मोह और महाभय को बढाने वाली है और इसमें मृत्यु की दीनता है।

दूसरा अध्याय

द्वितीय आस्रव द्वार—मृषावाद

(श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं) हे जम्बू ! दूसरा मृषावाद अध्ययन है।

मृषावाद का स्वरूप—जो लोग गुण-गौरव रहित और चपल होते हैं, वे असत्य बोलते हैं। असत्य भाषण भयंकर है, दुःखकर है, अपयश करने वाला है, वैर बढाता है, अरति-रति-राग द्वेष तथा मन में संक्लेश उत्पन्न करता है, शुभ फल रहित है और मायाचार तथा अविश्वास वाला है. नीच जन ही इसका सेवन करते हैं, यह अप्रशस्त है, अविश्वास पैदा करता है, श्रेष्ठ साधु जनों द्वारा निन्दनीय है, दूसरों को पीडा देने वाला है, परम कृष्ण लेश्या सहित है, दुर्गति गमन को बढाता है, पुनः पुनः जन्म-मरण उत्पन्न करता है, अनादि काल से संसार में अभ्यस्त है, दारुण फल देता है। ऐसा यह दूसरा मृषावाद अधर्म द्वार है।

मृषावाद के नाम—मृषावाद के मुख्यतया तीस सार्थक नाम हैं। वे इस प्रकार हैं (१) अलीक (२) शठ—मायाचारी का कार्य (३) अनार्य (४) माया मृषा (५) असत्क-असत् पदार्थ कहना (६) कूट कपट-अवस्तु (७) निरर्थक-अपार्थक अर्थात् व्यर्थ और मिथ्या भाषण (८) विद्वेष-गर्हणीय—द्वेषवश होकर निन्दा करने वाला वचन या साधु जनों द्वारा

निन्दनीय (९) वक्र (१०) पाप (११) वञ्चना (१२) न्यायनिष्ठ पुरुषों द्वारा त्यागा हुआ (१३) विश्वासहीन (१४) अपने दोषों और दूसरे के गुणों को ढँकने वाला, (१५) उत्कूल सन्मार्ग से भ्रष्ट करने वाला अथवा न्याय रूपी नदी के किनारे से दूर करने वाला (१६) पीड़ित वचन (१७) दोषारोपण (१८) पापहेतु (१९) वलय—गोलमोल (२०) गहन (२१) मन्मन-अस्पष्ट गुनगुनाना (२२) नूम—ढँकने वाला (२३) मायाचार छिपाने वाला वचन—निकृति (२४) अप्रत्यय -अविश्वास (२५) असयम—असदाचार (२६) असत्य सध (२७) सत्य और सुकृत का विरोधी-विपक्ष(२८)अपवीक-निंदनीय बुद्धि वाला(२९) उपधि अशुद्ध—मायाचार से अशुद्ध (३०) अवलोप—सद्भूत वस्तु का अपलाप।

इस सावद्य वचन योग मृषावाद के पूर्वोक्त तीस नाम हैं।

मृषावादी—पापी असयमी, अविरत जिनका चित्त कपट से कुटिल तथा कटुक है और क्षण-क्षण में जिन्हें नयी-नयी आकांक्षाएँ होती हैं, क्रोधी, लोभी, दूसरे को भय उत्पन्न करने वाले या स्वय भयभीत दिल्लगीबाज, गवाह, चोर, जासूस, भट, चुगी वसूल करने वाले जीते हुए जुआरी, गहना रखने वाले मायाचारी खोटा वेष धारण करने वाले, (कुलिंगी), मायावी झूठा नाप तोल करने वाले व्यापारी, खोटा सिक्का चलाकर अजीविका करने वाले, ठग, जुलाहे, सुनार तथा कारीगर, चार, चाटुकार, (भाट भाँड आदि) झूठा पक्ष लेने वाले, कोतवाल, चुगलखोर, कर्जदार, दूसरे के बोलने से पहले ही उसके अभिप्राय को ताड़कर बोलने में दक्ष, अथवा सत्य सिद्धान्तों के अभिप्राय को न समझने वाले विकल बुद्धि, साहसी (बिना विचारे काम करने वाले), तुच्छ, सत्य से रहित, धन-दौलत का अभिमान करने वाले, असत्य की स्थापना करने के चित्त वाले, अपने-आपको बडा बताने वाले, स्वच्छन्द, नियमहीन, मनचाहा बोलने वाले, ये सब मिथ्या भाषण करते हैं और जो मिथ्या भाषण से विरत नहीं है वे भी मिथ्या भाषी हैं।

लोक का स्वरूप मिथ्या बतलाने वाले नास्तिक वादी कहते हैं:—आत्मा नहीं है, परलोक गमन नहीं होता है। सुख दुख जनक पाप पुण्य नहीं बँधता है, पाँच भूतों से शरीर बना है और वह प्राण वायु के कारण कार्यों में प्रवृत्त होता है। कोई (बौद्ध) रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार इन पाँच स्कन्धों को जीव मानते हैं और इनके कारण रूप मन को जीव मानते हैं। कोई-कोई वायु को ही जीव मानते हैं। शरीर सादि है और सान्त है—अतः एक वर्तमान भव ही भव है। इसके नाश होने पर सर्वनाश हो जाता है—फिर आत्मा नहीं रहता—मृषावादी ऐसा कहते हैं। इसलिए दान, व्रत, पौषध, तप, संयम, ब्रह्मचर्य आदि कल्याणकारक क्रियाओं का फल नहीं होता। हिंसा, झूठ, चोरी, परस्त्री-सेवन और परिग्रह पाप का कारण नहीं है। कर्मजनित नरक, तिर्यञ्च और मनुष्यों की योनि नहीं है, देवलोक नहीं है, मुक्ति गमन नहीं होता, माता-पिता नहीं हैं, पुरुषार्थ नहीं है, प्रत्याख्यान नहीं है, काल द्रव्य नहीं है, परलोक गमन का कारण मृत्यु नहीं है, अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव नहीं होते, ऋषि-मुनि नहीं हैं, धर्म और अधर्म का थोड़ा या बहुत कुछ भी फल नहीं होता है। इसलिये इन्द्रियों के अनुकूल सब प्रकार के विषय भोगों में खूब प्रवृत्ति करनी चाहिए—इसमें कोई आपत्ति नहीं है। न कुछ पाप कार्य है, न पुण्य कार्य है लोक के स्वरूप को उलटा बताने वाले नास्तिक (वाम मार्गी आदि) लोग ऐसा कहते हैं।

दूसरा मिथ्या मत यह है। असद्भाव वादी मूढ लोग ऐसी प्ररूपणा करते हैं:—यह लोक अण्डे से उत्पन्न हुआ है और ब्रह्मा ने स्वयं इसका निर्माण किया है। इसी प्रकार कोई कोई यह मिथ्या प्ररूपणा करते हैं कि प्रजापति और ईश्वर ने जगत् का निर्माण किया है। कोई कहते हैं यह समस्त जगत् विष्णुमय है—विष्णु के अतिरिक्त संसार में दूसरी कोई सत्ता नहीं है। कोई यह मृषावाद करते हैं कि—आत्मा एक है, वह पाप पुण्य का कर्ता नहीं है, न सुख दुःख का भोगता है सुख दुःख का

कारण सर्वथा और सर्वत्र इन्द्रियाँ ही है—और कोई नहीं। आत्मा एकान्त नित्य है, एकान्त निष्क्रिय है, निर्गुण है निर्लेप -कर्म बन्धन से रहित है। इस प्रकार असत् की प्ररूपणा करते हैं।

लोक में जो सुख या दुख दिखाई देता है वह अकस्मात है स्वभाव से होता है, या देवता के प्रभाव से होता है अर्थात् सुख दुख का कारण कर्म नहीं है। पुरुषार्थ से किया हुआ शुभ-अशुभ नहीं है, वस्तु के स्वरूप और विधानों को नियति करती है, ऐसा कोई-कोई मिथ्यावादी कहते हैं।

कोई-कोई नास्तिक, जो ऋद्धि, रस और सुख में आसक्त हैं, धर्म क्रिया करने में आलसी हैं वे अपने और दूसरे के मन को तसल्ली देने के बहाने धर्म के नाम पर मिथ्या प्ररूपणा करते हैं। कितने ही अधर्म को अंगीकार करके "यह राजा से विरुद्ध है" इत्यादि इल्जाम लगाते हैं, चोरी नहीं करने वाले को चोर कह देते हैं विरक्त पुरुष को दुराचारी, तथा शीलवान को परस्त्री सेवी कह कर कलङ्कित करते हैं कि यह तो —गुरु की पत्नी का सेवन करता है। कोई-कोई किसी सदाचारी की कीर्ति को न सहते हुए उसे नष्ट करते हुए कहते हैं कि यह अपने मित्र की स्त्रियों का सेवन करता है, यही अधर्मी है, यही विश्वासघातक है, पापकर्म करने वाला है, अगम्य-गामी (बहिन आदि के साथ दुराचार करने वाला) है, यह दुष्टात्मा है, बहुत से पापों से युक्त है, ऐसा भद्र पुरुष के विषय में भी ईर्ष्यालु लोग कहते हैं। वे गुण, कीर्ति, स्नेह और परलोक की परवाह नहीं करते हैं। मिथ्या भाषण करने में दक्ष और दूसरों में दोष निकालने वाले ऐसे लोग असीम दुःख भोगते हैं। वे बिना सोचे-विचारे मनमाना बोलते हैं। वे दूसरे की धरोहर को पचा जाते हैं और पर धन में लोलुप होकर दूसरे में जो दोष नहीं होते उन दोषों का आरोपण करते हैं। वे मृषावादी झूठी गवाही देते हैं, धन के लिये झूठ बोलते हैं, कन्या विषयक झूठ बोलते हैं, भूमि के लिये झूठ

बोलते हैं, और चोपाये वगैरह पशुओं के लिये झूठ बोलते हैं। ये स्थूल मृषावादी लोग अधोगति में जाते हैं।

इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार से झूठ बोला जाता है। कोई जाति, रूप, कुल, और शील के कारण मिथ्या बोलते हैं। उनका मन चपल होता है। वे चुगली खाते हैं। तथा मोक्ष का घात करने वाला, असत, द्वेष और अनर्थ करने वाला पाप कर्मों का कारण, भली भांति न देखा हुआ, अच्छी तरह न सुना हुआ, अच्छी तरह न सोचा हुआ, लज्जाहीन, लोक-निन्दनीय, वध, बन्धन, और क्लेश की अधिकता वाला, जरा, मरण, दुःख और शोक का कारण भूत, अशुद्ध परिणामों से मलीन वचन बोलते हैं। मिथ्या भाषण द्वारा हिंसा करने वाले, असत् गुण को प्रगट करने वाले, सत् गुण को छिपाने वाले, हिंसा द्वारा प्राणियों का घात करने वाले, मृषावाद में आसक्त, पुण्य पाप को न जानने वाले लोग सावद्य, अकुशल, सत्पुरुषों द्वारा निन्दनीय, पाप जनक, मिथ्या वचन बोलते हैं।

तथा हिंसा आदि के साधनों द्वारा होने वाली क्रिया के प्रवर्तक लोग भी स्व और पर का विविध प्रकार से सत्यानाश (अहित) करते हैं।

इसी प्रकार जो लोग शिकारियों को भैंसा या सूअर आदि बतलाते हैं, व्याधों को खरगोश प्रशय और मृग आदि की खबर दे देते हैं, चिड़ीमारों को तीतर, बटेर, लावा, गौरैया, आदि का पता देते हैं, मच्छीमारों को मछली, मगर, कछुवा बतलाते हैं, धीवरों को सङ्ख, कौडी आदि बताते हैं, सँपेरों को अजगर गोणस, मडली, दर्वीकर और मुकुली आदि जाति के साँपों की खबर देते हैं, अहेरियों को गोधा, सेहा, सल्लकी, गिरगिट आदि की खबर देते हैं, जाल बिछाने वालों को हाथियों या वानरों के झुण्ड की खबर देते हैं, पक्षी पालने वालों को तोता, मोर, मैना, कोयल, हस और सारस के समूह की खबर देते हैं, कोतवाल (पुलिस आदि को) वध, बन्धन और पीडा पहुँचाने की युक्ति बतलाते हैं,

चोरों को धन, धान्य, गाय, बैल और भेड़ा वगैरह की खबर देते हैं, गुप्तचर को ग्राम, नगर, पट्टन की खबर देते हैं, मार्ग में हत्या करने वाले लुटेरों-डाकुओं को मुसाफिरों की खबर देते हैं और चोरों की खबर कोतवाल को दे देते हैं, तथा जो लोग ग्वालों को पशुओं के कान आदि पर निशान करने, बधिया करने, गाय-भैंस के वायु भरने, दुहने, पोषने, बछड़े को अन्य गाय के साथ हिलाने, पीड़ा उत्पन्न करने, बैल आदि को गाडी में जोतने आदि के उपाय बतलाते हैं, खान वालों को धातु, मणि, सिला, मूँगा, रत्न आदि का उत्पत्तिस्थान बतलाते हैं, जो मालियों को फूल-फल उत्पन्न करने के उपाय कहते हैं, वनचरों को मूल्यवान् मधु की खबर देते हैं, जो लोग उच्चाटन आदि के यन्त्र बतलाते हैं, विष का कथन करते हैं, गर्भपात करने का उपाय सुझाते हैं, नगर आदि को क्षोभ (आदि) पहुँचाते हैं, मन्त्र का आवेशन करते हैं, वशीकरण आदि मन्त्र और औषधि का प्रयोग बतलाते हैं, चोरी जारी तथा अन्य पाप करने की रीति सिखलाते हैं, छल-कपट से दूसरे के बल का नाश करने की युक्ति बतलाते हैं तथा ग्राम का घात जङ्गल जलाना, तालाब फोडना आदि कार्य सिखाते हैं, बुद्धिनाशक, वशीकरण, भय, मृत्यु, क्लेश और दोष उत्पन्न करने वाले, अत्यन्त मलीन भावों से पूर्ण तथा प्राणियों का साक्षात् या परम्परा से घात करने वाले वचन—चाहे वे यथार्थ ही हों—बोलने वाले हिंसक वचन बोलते हैं। (ये सब मिथ्या वचन हैं)।

इसी प्रकार पूछने पर या बिना पूछे ही दूसरों की चिन्ता करने वाले—बिना कुछ सोचे-विचारे सहसा बोल उठते हैं कि ऊँट, बैल या रोझ को निकालो—काम में लगाओ। ये अब काम में आने योग्य हो गये हैं। घोडा, हाथी, बकरा या मुर्गे को खरीदो, खरीदवाओ, बेचो, पकाओ अपने आत्मीय-जन को दे दो। मदिरा वगैरह पीओ, दासी, दास, नौकर-चाकर, भागीदार शिष्य, प्रेष्य, काम करने वाले, किंकर स्वजन,

परजन आदि निठल्ले क्यों बैठे हैं—इनसे काम क्यों नहीं लेते ? आपकी स्त्री काम क्यों नहीं करती ? गहन वन, खेत, ऊसर जमीन तथा अन्य जमीन मे बहुत घना घास उग आया है उसमे आग लगा दो, उसे उखाड़ फैंको, पेडों को घाणी, वर्तन आदि साधनों का निर्माण करने के लिये काट डालो। गन्ने को काट लो, पेरो तिलों को पेरवालो, मकान के लिये ईंटें बनवालो, जमीन जोतो या जुतवाओ, जगल मे बडे-बड़े ग्राम, नगर, खेड़ा, कर्वट (कस्बा) बसाओ, मौसिमी फूलों को, फलों को, कन्दमूलों को कुटुम्बियों के लिये इकट्ठा कर लो, शालि, धान, जौ को काट लो, मसलो, उडाओ और भण्डार में भर लो। छोटे-बड़े जहाजों के समूह को लूट लो और दल लेकर निकलो, जगल मे छिपकर शत्रुओं से घमासान लडाई करो, गाडी और घोडा वगैरह चलाओ, बालक का उपनयन, मुण्डन, विवाह, यज्ञ आदि अमुक दिन करो क्योंकि वह दिन शुभ है, अमुक करण, मुहूर्त, नक्षत्र तिथि में करो, आज स्नान करो, मजे से खाओ-पिओ, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, अशुभ स्वप्न आदि आने पर अपने तथा अपने परिजनों की रक्षा के लिये मन्त्रों से सस्कार किये हुए जल से स्नान करो, शान्ति कर्म करो। अपनी रक्षा के लिये अपने मस्तक की जगह आटे का मस्तक आदि चण्डिका देवी को चढाओ, विविध प्रकार की औषधि, मद्य, मास, भक्ष्य, अन्न-पान, माला, विलेपन, जलते हुए दीपक, धूप जलाना इत्यादि की भेंट देवता को चढ़ाओ, अमङ्गल की सूचना करने वाले प्रकृति विकार, अशुभ स्वप्न, अशुभ शकुन, क्रूर ग्रह, तथा अन्य अमङ्गल के फल को दूर करने के लिए विविध प्रकार की हिंसा वाला प्रतिकार करो, अमुक की आजीविका को लात मार दो, बिलकुल दान मत दो, अच्छा मारा, भला मरा, भला काटा, ठीक भेदा, इस प्रकार के उपदेश करने वाले लोग मन, वचन काय से मृषावाद का पाप उपार्जन करते हैं। ये मृषावादी अकुशल हैं, अनार्य हैं, उनका आगम मिथ्या है, वे मिथ्या धर्म मे तत्पर हैं, मिथ्या

कथाओं में रमण करते हैं और तरह-तरह से मिथ्या भाषण करते हैं।

मृषावाद के फल—जो लोग मृषावाद के फल को नहीं जानते वे अत्यन्त भयंकर निरन्तर वेदना वाली बहुत समय तक बहुत-से दुःखों से परिपूर्ण नरकयोनि और तिर्यञ्च-योनि में उत्पन्न होते हैं। इस मृषावाद में फँसे हुए लोग मृषावाद से पुनर्भव रूप भयंकर अन्धकार में भ्रमण करते हैं, दुर्गति में वास करते हैं। वही लोग इस जन्म में बेहाल बुरा फल भोगने वाले पराधीन, निर्धन, भोगोपभोग की सामग्री से रहित और दुःखी देखे जाते हैं। उनके शरीर फूट निकलते हैं। वे बीभत्स और कुरूप होते हैं। उनका स्पर्श अत्यन्त कठोर होता है, उन्हें कहीं भी आराम नहीं मिलता, उनके शरीर का वर्ण उज्ज्वल नहीं होता शरीर निस्सार और कान्तिहीन होता है। उनकी वाणी अव्यक्त और विफल होती है। वे सस्कार-हीन असभ्य और अनादरणीय होते हैं। दुर्गन्धित शरीर वाले (विशिष्ट) चेतनाहीन, अनिष्ट, अकान्त, कौवा के समान स्वर वाले, हीन और टूटे-फूटे उच्चारण वाले होते हैं। वे हिंसा के पात्र बनते हैं। जड़, बहरे और अन्धे होते हैं, गूंगे होते हैं, उनकी इन्द्रियाँ बुरी और विकार वाली होती हैं। वे स्वयं नीच होते हैं और उन्हें नीच जनों की सेवा भी करनी पड़ती है। वे लोक में निन्दनीय होते हैं। उन्हें दूसरों के टुकड़ों पर अपना निर्वाह करना पड़ता है। निम्न श्रेणी के लोगों की दासता करनी होती है। वे दुर्बुद्धि, लोक शास्त्र, वेद (ज्ञान) शास्त्र, अध्यात्म शास्त्र, और दर्शन शास्त्र के ज्ञान से भी रहित होते हैं, धर्म-बुद्धि से शून्य होते हैं। इस प्रकार मृषावाद से उपार्जित कर्म रूपी अग्नि में जले हुए मनुष्य अशुभ फल पाते हैं। वे अपमान भोगते हैं, उनकी चुगली खाई जाती है, निन्दा की जाती है, उनके प्रेमियों से प्रेम तुड़ा दिया जाता है, वे गुरुजनों, बन्धुजनों और स्वजनों के अपशब्द सुनते हैं, और विविध प्रकार के मिथ्या आरोप सहन करते हैं। ये आरोप हृदय

और मन को सन्ताप पहुँचाते हैं, और जीवन पर्यन्त उनका निराकरण नहीं हो सकता। अनिष्ट और कठोर वचनों से की जाने वाली भर्त्सना से उनका चेहरा और मन दीन बन जाता है। उन्हें बुरा भोजन, बुरे वस्त्र मिलते हैं, बुरी बस्ती मे बसना पडता है। वे इस प्रकार क्लेश भोगते हुए न सुख पाते हैं, न मानसिक शान्ति ही। वे अत्यन्त भयकर सैकडो दु खों से दु.खी होते हैं।

यह मृषावाद का फल-विपाक है। इस लोक और परलोक में सुखा-भाव, बहुत दुख, महान् भय, प्रचुर, प्रगाढ दारुण और कठोर असाता, बिना भोगे हजारों वर्ष में भी छूट नहीं सकती और न मोक्ष हो सकता है।

ज्ञात-कुलनन्दन, महात्मा, जिन वीर ने मृषावाद का यह फल-विपाक कहा है।

इस मृषावाद का तुच्छ तथा चपल मनुष्य प्रयोग करते हैं, यह भयकर है, दु ख जनक है, अपयश फैलाने वाला, वैर बढाने वाला, अरति, रति, राग, द्वेष और मानसिक क्लेश बढाने वाला, कूडकपट को छिपाने वाला, द्रोहकारी, नीच जनों द्वारा आचरित, नृशस, अविश्वास जनक, साधु जनों द्वारा निन्दनीय, दूसरों को पीडा पहुँचाने वाला, परम कृष्ण लेश्या से युक्त, दुर्गति गमन को बढाने वाला, पुनर्भव-जनक चिर परिचित, चिरकाल से आया हुआ और निन्दनीय है।

तीसरा अध्याय

तृतीय आस्रव द्वार–अदत्तादान

अदत्तादान का स्वरूप—श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं—हे जम्बू ! तीसरा अदत्तादान (चोरी) नामक आश्रव द्वार है। यह अदत्तादान अर्थात् बिना दिये किसी के धन आदि का ग्रहण करना संताप, मरण, भय रूपी पातकों का जनक है, दूसरे के धन मे लोभ उत्पन्न करता है। जो चोरी करते हैं उन्हे आधी रात आदि विषय काल और जँगल आदि विषम स्थानों का आश्रय लेना पड़ता है। जिनकी तृष्णा शान्त नहीं हुई है उन्हें नीच गति में ले जाता है। अदत्तादान अपयश का कारण है और अनार्य कर्म है। अदत्तादानी दूसरे के घर मे घुसने के लिये हमेशा छिद्र और मौके की ताक मे रहता है। उसे राजा आदि के द्वारा अनेक आपत्तियाँ भोगनी पड़ती हैं। वह उत्सव में मस्त, असावधान तथा सोये हुए लोगों को धोखा देने वाला, उनके चित्त को व्यग्रकरने वाला मारने वाला और अशात परिणामों को पैदा करने वाला है। चोर इसको सराहना करते हैं–सत्पुरुष नहीं। अदत्तादान मे करुणा का अभाव है, राज कर्मचारी उसे रोकते हैं, साधु जन उसकी सदैव निन्दा करते हैं। यह प्रिय जनों और मित्र जनों के साथ सबन्ध बिगाड देता है। इससे उसका प्रेम नष्ट

हो जाता है। इसमें राग-द्वेष की प्रचुरता है। तीव्र समर-संग्राम, झगडा-टटा और पश्चात्ताप को उत्पन्न करता है। दुर्गति के पतन को बढाने वाला है। भव-परम्पराका उत्पादक है। चिरपरिचित है, अविच्छिन्न रूपसे चला आता है और खराब फल देने वाला है। ऐसा यह तीसरा अधर्मद्वार है।

अदत्तादान के नाम—अदत्तादान के तीस गुण-निष्पन्न नाम हैं। वे इस प्रकार हैं:—

(१) चोरिक्क—चोरी (२) परहड—दूसरे के धन को हरना (३) अदत्त—बिना दी हुई वस्तु लेना (४) कूरिकड—क्रूर पुरुषों द्वारा किया जाने वाला (५) परलाभ—दूसरे के धन का लाभ (६) असंयम (७) परधन में—आसक्ति (८) लोलिक्का—लोलुपता (९) तस्करत्व—चोरपन (१०) अवहार—अपहरण (११) हस्तलहुत्तण—हाथ की चालाकी (१२) पापकर्म (१३) स्तेय (१४) हरण-विप्पणास—परधन को हर कर छिपा लेना (१५) आदियणा—परधन का ग्रहण करना (१६) लुपणा—परधन को छीन लेना (१७) अप्पच्चय—अविश्वास (का कारण) (१८) ओवील—दूसरों को कष्ट देना (१९) अक्खेव—आक्षेप (२०) खेव—दूसरे के हाथ से धन को ले लेना (२१) विक्खेव-विक्षेप (२२) कूडया-तराजू वगैरह को अन्यथा रखना (२३) कुलमसी-कुल में दाग लगाने वाला (२४) कखा—पर द्रव्य की अभिलाषा (२५) लालप्पण पत्थणा—दीनता पूर्वक बोलना और प्रार्थना करना। (२६) नाश का कारण भूत व्यसन (२७) परधन में इच्छा और गाढी मूर्छा करना (२८) तृष्णा और गृद्धि (२९) नियडिकम्म—मायाचार (३०) दूसरे की नजर बचाकर चोरी करना।

ये अदत्तादान के तीस नाम हैं। यह अदत्तादान पाप और लडाई आदि अनेक पापों का घर है।

अदत्तादानी—तस्कर दूसरों का द्रव्य हरने वाले, चालाक, चोरी की तालीम लेने वाले, मौके के जानकार, साहसी, क्षुद्रात्मा, लोभ से

सताये हुए, वचन के आडम्बर से अपने स्वरूप को छिपाने वाले, निर्लज्ज, धन में गृद्ध, दूसरों की सामने से हिंसा करने वाले, ऋण न चुकाने वाले संधि भंग करने वाले, राजा का खजाना आदि लूटने वाले, जिन्हें देश निकाले का दंड मिला है तथा लोक में जो बहिष्कृत हैं वे अदत्तादानी चोर हैं।

जंगल जलाने वाला, ग्राम-घातक, नगर-घातक, पथिक-घातक, गुप्त रूप से ग्राम जलाने वाला, तीर्थयात्रियों को मारने वाला, हाथ की चालाकी करने वाला, दूसरे को दगा देकर चोरी करने वाला जुआरी, कोतवाल, स्त्री-चोर, पुरुष-चोर, सेंध लगाने वाला, गांठ खोलने या काटने वाला, मनुष्य को प्रगट रूप में मार कर धन हरने वाला, ठग, हठ पूर्वक धन लेने वाला, खूब मार-मार कर धन लूटने वाला, गुप्त चोर, गाय चुराने वाला, घोड़ा चुराने वाला, दासी चुराने वाला, अकेला चोरी करने वाला, चोर को छिपाने वाला, चोर को खाद्य आदि की सहायता देने वाला, चोर के पीछे रक्षक रूप से रहने वाला, मार्ग का घात करने वाला, विश्वास दिलाकर धन लेने वाला, दूसरों को मूढ बनाने के लिये विश्वास-जनक वाक्यों का प्रयोग करने वाला, राजा आदि द्वारा पकडा हुआ इस प्रकार चोरी और पर धन का हरण करने की बुद्धि के भेद से अदत्तादान करने वाले विविध प्रकार के हैं, जो परधन के ग्रहण से विरत नहीं हैं वह भी अदत्तादानी हैं।

पर धन लोभी राजा—अत्यन्त समर्थ और परिग्रह वाले राजा लोग पराये धन में आसक्त होकर अपने धन में असंतुष्ट होते हुए दूसरे राजाओं के देश का नाश करते हैं। वे दूसरे के धन में लुब्ध होकर हाथी, घोड़ा, रथ, प्यादा इस प्रकार चतुरङ्ग सेना के साथ एक मात्र युद्ध पर विश्वास रखने वाले प्रधान योधाओं सहित "मैं पहले युद्ध में उतरूँ" इस प्रकार के अहंकार के साथ प्रयाण करके पद्म व्यूह, शकट व्यूह, शूची व्यूह, चक्र व्यूह, गरुड व्यूह आदि की स्थापना करते हैं और

अपनी सेना से विरोधी सेना को घेर लेते हैं। वे पराजित के धन का अपहरण कर लेते हैं। दूसरे योद्धा रणभूमि में स्वेच्छा से जाकर संग्राम में प्रवेश करते हैं।

यह योद्धा युद्ध में किस प्रकार जाते हैं? वे कवच आदि से सज्जित होते हैं, तैयार होते हैं, मस्तक पर वस्त्र को कस कर बांधते हैं, हाथ में तलवार आदि शस्त्र धारण करते हैं, शरीर पर लोहे का बख्तर पहनते हैं, चमडे के कवच से शरीर को ढंकते हैं, लोहे का कंचुक पहनते हैं, कांटेदार कवच पहनते हैं, तर्कश बांधते हैं, संग्राम में जाने के लिये अपने हाथ से शस्त्रास्त्रों की विशेष रचना करते हैं, कठोर धनुष को सहर्ष हाथ में धारण करते हैं, खूब तीखे बाणों की वर्षा करते हैं, वर्षा की धारा के समान बाणों की प्रचंड वृष्टि से छाये हुए मार्ग में प्रवेश करते हैं।

जब आकाश में धनुष, बाण, तलवार, त्रिशूल, बरछी उछलती हैं तब योद्धा लोग बायें हाथ में ढाल लेकर म्यान से चमचमाती हुई तलवार निकाल कर प्रहार करने का प्रक्रम करते हैं। जब योद्धा अपने शत्रुओं की ओर भाला, बाण, चक्र, गदा, कुल्हाडा, मूसल, हल, त्रिशूल, लकडी, भिण्डिमाल, बड़ा भाला, पट्टिश, चमड़े से मढा पत्थर, घन, मुट्ठी बराबर पत्थर, मुद्गर, भोगल, गोफण के पत्थर, टक्कर, भाथा, कुवेणी (एक प्रकार का मगध देश का शस्त्र) आसन-शस्त्र, तलवार आदि चमचमाते हुए हथियार फैंकते हैं तो आकाश में बिजली के प्रकाश के समान कान्ति फैल जाती है।

जब समर-भूमि में शंख, भेरी, दुंदुभि, तुर्य की स्पष्ट ध्वनि होती है और नगाड़े बजने से गम्भीर शब्द होता है तो शूर-वीर हर्षित उत्तेजित होते हैं और कायर उस आवाज से भयभीत होते हैं। हाथी, घोड़ा, रथ, और सुभट के वेग से चलने के कारण जो धूल उड़ती है उससे अन्धकार छा जाता है। उस अंधकार से कायरों के नेत्र और हृदय व्याकुल

हो उठते हैं। ढीले होने के कारण चचल शिखर वाले मुकुट, किरीट, कुण्डल, कण्ठा से शोभित तथा विजय पताका, वैजयन्ती पताका, ढोरे जाने वाले चामर और छत्र धारी गहरे अन्धकार में छिप जाते हैं। घोडों की हिनहिनाहट, हाथी की चिंघाड, रथ की घड़ घड़ाहट, पैदलों की हरहराहट, तालीं, सिंह जैसी गर्जना, दाँत पीसकर किया जाने वाला सीत्कार, दीन स्वर, आनन्द प्रद शब्द कठ से निकलने वाली ध्वनि, मेघ के समान भयङ्कर गर्जना, एक साथ हँसने और रोष प्रगट करने से होने वाला शब्द, इस प्रकार का कोलाहल युद्धभूमि में होता रहता है।

योद्धाओं का चेहरा क्रोध से भयङ्कर हो जाता है। वे अपने होठों को दातों से काटते हैं और गहरा प्रहार करने के लिये उद्यत रहते हैं। क्रोध की अधिकता के कारण उनके फटे हुए से नेत्र लाल हो जाते हैं। वैर की दृष्टि और क्रोध की चेष्टा से उनके ललाट पर त्रिवली (तीन रेखाये) पड़ जाती है। उनकी भौंहें टेढी हो जाती हैं। शत्रु को मारने के विचार मे हजार मनुष्यों का सा बल उन सुभटो के शरीर मे प्रगट हो आता है। शीघ्रगामी घोड़े जिसम जुते हैं ऐसे रथ पर बैठकर दौडते हुए सुभट आकर कुशलता के साथ प्रहार करके विजय लाभ करते हैं और हर्ष के मारे दोनों हाथ उपर उठाकर अट्टहास्य करते हैं। अनेकों मनुष्य कोलाहल करते हैं।

आयुध ढाल और बख्तर मे सजे हुए अभिमानी और चालाक योद्धा विरोधी के हाथियों को मारने या अपने अधीन करने के लिए आमने-सामने भिड़ जाते हैं और युद्ध कला मे निष्णात होने का अभिमान करने वाले योद्धा म्यान से तलवार निकाल कर, क्रोध पूर्वक जल्दी से आगे आकर वैरी के हाथी की सूँड काट डालते हैं या वैरी का हाथ काट देते हैं। बाणों की प्रचण्ड मार से घायल हुए तथा अन्य हथियारों से छिन्न-भिन्न हुए हाथी आदि के बहते हुए रक्त मे समरभूमि का मार्ग चिकने कीचड़ से भर जाता है।

जिनके पसवाड़े (बगल) मे हुए घाव से रक्त वह रहा है और आँते बाहर निकल पड़ी हैं ऐसे योद्धा विकल होकर तडफते हैं। कोई मम स्थान पर हुए घाव मे मूर्छित होकर जमीन पर निश्चेष्ट होकर पडता है। युद्ध-भूमि में दया उत्पन्न करने वाली विलाप की ध्वनि सुन पड़ती है। मृत-योद्धा, घूमते घोड़े, मदोन्मत्त हाथी, भयभीत मनुष्य दण्ड से अलग हुई ध्वजा-पताकायें, टूटे फूटे रथ, और हाथी के मस्तक हीन धड, हथियार, आभूषण आदि यत्र तत्र बिखर जाते हैं। बेसिर के धड़ नाचते फिरते हैं, भयङ्कर कौवों और लाशों मे लोलुप शृगालो की टोलियाँ घूमती हैं। अन्धकार छा जाता है।

पृथ्वी को कँपा देने वाले देवों के समान राजा लोग, साक्षात श्मशान के समान अतीव भयङ्कर-डरावने और जिसमे प्रवेश करना बहुत कष्टप्रद है ऐसे सग्राम के गहन स्थान मे दूसरे के धन की इच्छा मे प्रवेश करते हैं।

अन्य पैदल चोरो का समुदाय, चोरों के समूह का सञ्चालन करने वाले सेनापति, अटवी के विषम प्रदेशों मे रहने वाले, काला, हरा, लाल, पीला और सफेद इस प्रकार के विविध चिह्नपट धारण करने वाले धन के लोभ से दूसरे के देश का हनन करते हैं।

समुद्री चोर—समुद्र, हजारों तरगों की मालाओं से क्षुब्ध हो रहा है। उसमे ध्वस्त होता हुआ जहाज डगमगा रहा है। उसमे के मुसाफिर व्याकुल हो रहे हैं। पाताल-कलशों के प्रबल वायु के वेग से उछलते हुए समुद्र के पानी मे अन्धेरा छा रहा है। उस वायु के कारण क्षुब्ध पानी के उज्ज्वल फेन, इस प्रकार उठ रहे हैं मानों समुद्र अट्टहास्य कर रहा हो। जल की तरगे त्वरित वेग से चारों ओर से आ आकर वायु से चञ्चल होकर किनारे मे टकराती हैं। क्षुब्ध सलिलराशि आगे बढती हैं और तट से टकरा कर अपने स्थान की ओर लौट आती हैं। जो गङ्गा आदि बड़ी-बड़ी नदियों के वेगवान् जल के प्रवाह से भरता है, अत्यन्त

गम्भीर होने के कारण जिसकी थाह नहीं मिलती जिसमें बड़े-बड़े भवर पडते हैं—ऐसे तरगों एव कल्लोलों से परिपूर्ण सागर मे बडे-बड़े मगर-मच्छ, कछुवे, महोरग (एक प्रकार के मच्छ) सुसुमार हिंसक जलचर प्राणी परस्पर प्रहार करने के लिए आगे बढत हैं। यह अगणित भयङ्कर जलचर पानी में कायरों के हृदय मे कॅपकॅपी पैदा करते हैं, भयङ्कर शब्द करके अतिशय भीति उत्पन्न करते हैं। उपद्रव के स्थान, त्रासजनक आकाश की तरह अपार, प्रतीकार रहित, उत्पात से उत्पन्न हुए वायु के कारण अतीव वेगवान् और एक के ऊपर एक उछलने वाली तरङ्गो से युक्त, सगव, वेगवाला, दृष्टिमार्ग को आच्छादित करने वाला, कहीं गम्भीर, कहीं चौडा, गर्जना करता हुआ गूञ्जता हुआ, कडाका करता हुआ, धम धम-सी आवाज करने वाला, देर तक दूर से सुनाई देने वाली गम्भीर आवाज करने वाला समुद्र है। ऐसे समुद्र मे यात्रा करने वालों के मार्ग मे क्रुद्ध हुए यक्ष,राक्षस, कूष्माण्ड,पिशाच आदि हजारों उपसर्ग और उत्पात करते हैं और मार्ग में बाधा डालते हैं। उन व्यन्तर देवताओं को सन्तुष्ट करने के लिए जहाजी लोग बलिदान, होम, धूप, रक्तदान, पूजन वगैरह करते हैं। सब युगों में अन्तिम युग—प्रलयकाल की उपमावाले समुद्र का अन्त अत्यन्त दुष्कर है। गङ्गा आदि महानदियों का स्वामी—समुद्र अतीव भयकर दिखाई देता है। दुस्तर, दुराश्रय, खारे पानी से भरे हुए समुद्र में ऊँचे किये हुए काले पट वाले, जल्दी चलने वाले जहाजों मे बैठ कर, दूर-दूर जाकर पराया धन हरण करने वाले दया हीन और परलोक के भय से रहित चोर जहाजों को तोड डालते हैं, और उन्हें लूट लेते हैं।

चोरों का कष्ट—चोर गाव आकर, नगर, खेडा कर्वट, मण्डप, द्रोणमुख, पाटन, आश्रम, निगम और जनपद आदि में रहने वाले धनिकों का हनन करते हैं। कठोर हृदय वाले और निर्लज चोर दूसरों को लूटते हैं और गाये ले भागते हैं। यह दारुण बुद्धि वाले निर्दय चोर

अपने प्रिय आत्मीय जनों का भी हनन कर डालते हैं। घर में सेंध लगाते हैं और गाडा हुआ धन-धान्य-द्रव्य चुरा ले जाते हैं। ये करुणाहीन चोर देशवासियों को भी मारते-पीटते हैं। जिन्होंने परधन ग्रहण करनेका प्रत्याख्यान नहीं किया है, जो बिना दिया हुआ ग्रहण करना चाहते हैं, वे पर धन की खोज में मौके-बेमौके जगह जगह भटकते फिरते हैं। जहाँ चिताओं में जलते हुए रुधिरादि पूर्ण मुर्दों को निकालकर लोहू से भरे मुँह वाली डाकिनें उनका भक्षण करती हैं, उनका खून पीती हैं—ऐसे भयावने श्मशान में, जहाँ सियार भयानक शब्द करते हैं, उल्लू बोलते हैं, पिशाच छिपे छिपे कहकहा लगाते हैं—अट्टहास्य करते हैं, ऐसे डरावने-अरमणीय, बदबूदार, घृणा उत्पन्न करने वाले श्मशान में वन में, सूने घर में, पत्थर की खानों में, मार्ग के बीच में, आने वाले हाट आदि में, पर्वत की गुफा में सिंह आदि हिंसक प्राणियों के निवास वाले दुर्गम स्थानों में, क्लेश पाते हुए, गर्मी सर्दी से रूखे हुए शरीर वाले तथा कान्तिहीन चोर लोग नरक-तिर्यन्च भवों में भोगे जाने वाले दुःखों की परम्परा का एवं पापकर्मों का सञ्चय करते हैं।

मधुर भोजन जिन्हें दुर्लभ है और जो भूख प्यास से बेचैन होरहे हैं वे चोर मास, मुर्दे का मास कन्दमूल और जो मिल जाय वही खाकर पेट भर लेते हैं। उद्वेग युक्त, भय से कॉपते हुए, आश्रय हीन दशा में वनवास करते हैं। वन सैकड़ों सर्पों से व्याप्त होता है अत. उनके मन में सदा चिन्ता बनी रहती है। अपयशकारी और भयकर चोर इकट्ठे होकर गुप्त विचार किया करते हैं कि—आज किसका धन हरें? आदि। अनेक लोगों के कार्य तथा तत्सम्बन्धी साधनों में विघ्न डालने वाले, मदमत्त-प्रमत्त सुप्त—विश्राम लेने वाले लोगों के छिद्र देख कर मौका पाकर उनका घात करने वाले, कष्ट एव उत्सव के समय चोरी करने की बुद्धि वाले चोर रुधिर लोलुपी भेडिये की भाँति घूमा करते हैं। ये पर द्रव्य हरने वाले लोग राजा की मर्यादा का उल्लघन करने वाले, सत्पुरुषों

द्वारा निन्दनीय, अपने कार्यों से पाप उपार्जन करने वाले, अशुभ परिणाम वाले, दुख के पात्र, सदा अशान्त मलिन मन वाले. और इस लोक में भी नाना प्रकार के दु.ख उठाने वाले होते हैं।

चोरी का फल—कितने ही चोर पराये धन को ढूढते हुए राज-पुरुषों द्वारा पकड़े जाते हैं तब उन्हें मार खानी पड़ती है। वे बाधे जाते हैं, कैद किये जाते हैं, नगर मे घुमाये जाते हैं और कोतवाल को सौंप दिये जाते हैं। चोर पकड़ने वाले तथा चारक लोग कैदखाने मे डाल देते हैं। वहाँ लकड़ियों की मार सहनी पड़ती है, निर्दय जेलर के अत्यन्त कठोर वचन सुनने पड़ते हैं, वह गला पकड़ कर खींचता है। इस प्रकार उसे कारागार मे रखा जाता है। कारागार नरक के समान है। वहाँ रक्षक के प्रहार, आग के डाम, तिरस्कार, कटु वचन, भयङ्कर धमकी इत्यादि विवश हो कर सहना पड़ता है। वहाँ पहनने के वस्त्र उतरवा लिये जाते हैं। मलिन और धज्जियाँ-धज्जियाँ जोड़े हुए कपड़े पहनने पड़ते हैं। कैदी कारागार-रक्षक को धन देकर भी उनसे वस्त्र आदि की सुविधा मागते हैं। कारागार के पहरेदार उसे नाना प्रकार के बन्धनों मे बाधते हैं। जैसे हडि—खोड़ा (एक प्रकार का काष्ठ), लोहे की बेडियाँ, बालों की रस्सी, कुद्दएडक चमड़े की डोरी लोहे की साकल, लोहे की हथकड़ी, चमड़े का पट्टा, दामक, (पैर बाधने का उपकरण) इत्यादि बन्धनों से जेल के पहरेदार शरीर को सिकुड़वा कर और अङ्गोपाङ्ग मोड़ कर बाधते हैं। इन पुण्य-हीन जीवों को काष्ठ-यन्त्र मे किवाड़ों के बीच मे और लोहे के पींजरे मे रखकर मारते हैं, भोंयरे मे बन्द कर देते हैं, अधेरे कुएँ मे उतारते हैं, कील, जूवा और पहिये के साथ बाध देते हैं, खम्भे से जकड देते हैं, औंधे मुँह लटका देते हैं, इस प्रकार पीडा पहुँचाते हुए चोरों को मारते हैं। इसके सिवाय उनकी गर्दन मोडकर—नीचे झुकाकर मस्तक को छाती के साथ बाध देते हैं, धूल मे गाड देते हैं, उनके फडकते हुए और सास

लेते हुए हृदय को दबा कर बाँध देते हैं, मस्तक को चमड़े में कसते हैं, उनकी जांघ को चीर डालते हैं, काष्ठ यन्त्र में उनके घुटने आदि सन्धिस्थलों को बांध देते हैं, तपाये हुए लोहे की सलाई से दाग देते हैं, सुइयां चुभाते हैं, लकड़ी की नाई छीलते हैं, क्षार, नीम, मिर्च वगैरह तीक्ष्ण पदार्थ चोरों की नाक में डाले जाते हैं, इस प्रकार के सैकड़ों कष्ट उन्हें पहुँचाये जाते हैं।

छाती पर भारी लकड़ रखकर उन्हें पीड़ा पहुँचाई जाती है, उस लक्कड़ को हिला-हिलाकर उनकी हड्डियाँ तोड़ी जाती हैं। उनका गला बांध दिया जाता है, लोहे के डण्डे से छाती, पेट, गुदा, पीठ पर प्रहार कर पीड़ा पहुँचाई जाती है, हृदय को दबोचा जाता है और अङ्गो-पाङ्ग तोड़ दिये जाते हैं। अपने अधिकारी की आज्ञा से कितनेक सेवक निरपराधी को भी शत्रु भाव से यम की भाँति कष्ट देते हैं। वे अभागे अदत्त ग्रहण करने वालों को थप्पड़ मारते हैं चमड़े की टोपी से मारते हैं लोहे की सलाई से पीटते हैं और चमड़े के छोटे-मोटे चाबुकों से उधेड़ते हैं, बेंत फटकारते हैं। इस प्रकार सैकड़ों प्रहारों से अङ्ग-अङ्ग में मार सहने वाले बेचारे चोर विविध वेदनाओं को भोगते हुए भी चोरी के पाप का परित्याग नहीं करते।

विविध शस्त्रों से मार खाने की, लोहे की बेड़ियों में शरीर बंधने की और तोड़ने की, शरीर के प्राकृतिक वेगों के बन्द करने की, आदि आदि वेदनाएँ ये पापी जीव भोगते हैं।

इस प्रकार स्वच्छन्द इन्द्रियों वाले, विषयासक्त, अति मोह मुग्ध, पर धन में लुब्ध स्पर्शेन्द्रिय के विषय में तथा स्त्री में तीव्र आसक्ति रखने वाले, स्त्री के रूप-शब्द रस और गन्ध में लालसा रखने वाले, भोग के लालची, धन का अपहरण करने में आनन्द मानने वाले, इन सब चोरी के फलों से अनजान मनुष्यों को राज-कर्मचारी के पास लेजाकर सौंप दिया जाता है।

कैसे हैं राजकर्मचारी ? वध-शास्त्र के अभ्यासी अन्याय के व्यसनी, अन्याय करने वाले, घूस खोर, मायाचार के द्वारा ठगने में सावधान, तरह तरह से असत्य भाषण करने वाले, परलोक के विचार में विमुख और नरक गति में जाने वाले, इन राजकर्मचारियों की आज्ञा से चोरों के दुष्ट आचरण की सजा तत्काल नगर में घोषित कर दी जाती है। नगर में त्रिक, चौक, अनेक रास्तों का सङ्गम राज मार्ग सामान्य मार्ग में बेत से, लकड़ी से, डण्डे से, लाठी से पत्थर से, लातों से, ठोकरों से, कोहनी से प्रहार कर चोर के शरीर के अङ्गो-पाङ्ग कुचले-पीटे जाते हैं। उस समय अठारह प्रकार का चौर्य-कर्म करने वाले अङ्गो-पाङ्ग टूट जाने से पीड़ा पाते हैं दया-जनक अवस्था में आ जाते हैं। मारे प्यास के कण्ठ-होठ-तालु सूख जाता है तब चोर पानी की याचना करते हैं। उन्हें जिन्दगी की आशा भी नहीं रहती। परन्तु बेचारों का चुल्लू भर पानी भी नहीं मिलता। अगर कोई पानी पिलाने आता है तो राज—कर्मचारी उन्हें रोक देते हैं। दृढ बन्धनों में बँधे हुए और निर्दय रूप से पकड़े हुए, भाग न जाएँ इसलिए जिनके हाथ बँधे हुए हैं, फटे पुराने मामूली चीथड़े पहिने हुए, जिन्हें वध्य चिन्ह स्वरूप लाल कनेर की माला रस्सी की भाँति पहनाई गई है, मृत्यु के भय से जिनका शरीर पसीने से तर बतर हो रहा है—मानों शरीर पर तेल लगाया हो राख से लिपटा हुआ-सा जिनका शरीर दृष्टि गोचर होता है, जिनके केश धूल से भरे हुए हैं मानों माथे में कुसुम लगाया गया हो, जीवन की आशा से शून्य विकलता पूर्वक घूमते हुए, मारनेके लिए लेजाये जाने परभी प्राणोंकी ममता वाले इन चोरों के शरीरके तिलके समान टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते है। बहते हुए रुधिर से उनका शरीर भर जाता है इतना ही नहीं किन्तु उन्हीं के मास के छोटे छोटे टुकड़े करके उन्हें ही खिलाये जाते हैं। पापी लोग चमड़े के थैले में पत्थर भर कर उन्हे मारते हैं। वायु की भाँति अप्रतिहत स्त्री पुरुष और नगर-निवासियों के झुण्ड चोरों के साथ

उन्हें देखते हुए फिरते हैं। वध योग्य वस्त्र पहनाकर उन्हें नगर के बीच में फिराया जाता है। उन दीन चोरों की मृत्यु को कोई रोक नहीं सकता, वे अशरण हैं अनाथ हैं, बन्धु हीन हैं, स्वजनों से परित्यक्त हैं, इधर उधर करुणा भरी नजर दौड़ाते हैं, मृत्यु के भय से पूर्णतया उद्विग्न हैं। इस भाँति उन्हें वध स्थान पर पहुँचाया जाता है, शूली पर चढ़ाया जाता है, देह का विदारण किया जाता है, उनके अङ्गोंपाग काटे जाते हैं वृक्ष की डाल से बाँधे जाते हैं तब वे दीन वचनों से विलाप करते हैं।

किन्हीं-किन्हीं चोरों को दोनों पैर और दोनों हाथ बाध कर पहाड़ की चोटी से पटक दिया जाता है। वे बहुत ऊँचाई से गिरने के कारण पत्थरों से टकराते हुए चूर-चूर हो जाते हैं। कोई-कोई चोर हाथी के पैर के नीचे कुचलवाये जाते हैं। कोई-कोई पापी अधिकारी चोरों के अठारह अंगों को खण्डित कर देते हैं, किसी-किसी को कुल्हाड़े से मारते हैं। किसी के कान-होठ नाक काटते हैं और किसी की आँख-दांत और अण्डकोष उखाड़ लेते हैं। किसी का कान और मस्तक काट डालते हैं और वधभूमि में ले जाकर तलवार से टुकड़े कर डालते हैं। किसी को देश निकाला दिया जाता है, किसी को हाथ-पैर काट कर छोड़ दिया जाता है। किसी को मृत्यु पर्यन्त बाँध रक्खा जाता है, किसी चोर को हाथों-पैरों में बेड़िया डालकर कारागार में बन्द कर दिया जाता है।

इन परधन हरन वालों को आत्मीय जन भी त्याग देते हैं, मित्रगण से नित्य तिरस्कार पाते हैं, वे सब ओर से स्नेह न पाने के कारण निराश हो जाते हैं, अनेक लोगों के द्वारा अपमान-जनक धिक्कार आदि शब्दों से लज्जित किए जाते हैं, फिर भी निर्लज्ज बने रहते हैं।

क्षुधा से पीडित होते हुए, सर्दी-गर्मी की कठिन वेदनाओं को सहन करते हुए, कान्तिहीन मुख वाले, विरूप मुख वाले, निष्फल मनोरथ वाले, मैल से भरे हुए देह वाले, दुबले, ग्लान, खों-खों करते हुए, कोढ

ओर पेट की बीमारी से पीड़ित, जिनके नाखून-केश-दाढी और मूंछ बढी हुई है और जो अपने ही मल-मूत्र से भरे जाते हैं ऐसे चोर लोग कारागार में ही मरने की इच्छा न रहते भी मर जाते हैं।

मरने के अनन्तर उन्हें हाथ-पैर बांध कर घसीट कर कारागार से निकाला जाता है और खाई में पटक दिया जाता है जहाँ चीता, कुत्ता, सियार, सुअर, बिलाव आदि की टोलियाँ और सडासी सी चोंच वाले पक्षियों का झुण्ड आकर चोंचों से चोरों के मृतशरीर के अङ्गों पाग नोचते-चींथते हैं। कितनेक की देह में कीड़े पड जाते हैं। लोग उनकी अत्यन्त अप्रिय वचनों में निन्दा करते हैं—'अच्छा हुआ, यह पापी भला मरा।" इस प्रकार कह कर कितने ही लोग उनकी—मृत्यु पर आनन्दित होते हैं। इस प्रकार वे मर जाने के बाद भी अपने आत्मीय जनों को लज्जा उत्पन्न करते हैं।

मरणान्तर वे चोर नरक में उत्पन्न होते हैं। वहाँ अनिष्ट नरक में दहकते हुए अगारोंकी उष्ण वेदना एव हिम पटल की सी अत्यन्त शीत वेदना आदि कष्ट असाता वेदनीय कर्म के उदय से निरन्तर सहन करते हैं। नरक से निकल कर वे तिर्यंच योनि में उत्पन्न होते हैं। वहाँ भी उन्हे नरक की सी वेदना सहनी पडती है। फिर अतीव दीर्घ काल के पश्चात् वे जीव बड़ी कठिनाई से कदाचित् मनुष्य भव प्राप्त करते हैं। तो भी अनेक बार नरक गति में और लाखों बार तिर्यञ्च गति में जन्म लेकर मनुष्य पर्याय पाते हैं। मनुष्य होकर भी ये जीव अनार्य देश में नीच कुल में उपजते हैं। यदि आर्य देश में भी उत्पन्न हुए तो लोक बाह्य—पशुओं सदृश अधम कुशलता रहित तथा काम भोगों में सदा अतृप्त रहने वाले होते हैं। वहाँ भी वे नरक का बंध करते हैं, भव परम्परा में जन्म-मरण भोगते हैं, पुन ससार-बंध करते हैं धर्मशास्त्र के ज्ञान से शून्य, अनार्य, क्रूर कर्म करने वाले और मिथ्या शास्त्रों के मत को मानने वाले बनते हैं। वे एकान्त हिंसा में रुचि रखने वाले, मकड़ी के जाल की भाँति

कर्म के आवरण मे फँस कर दु.ख भोगते हैं। वे अपने आठ कर्मो के ततुओं के सुदृढ बन्धन से बधे हुए परिभ्रमण करते हैं। वे इस प्रकार नरक-तिर्यंच मनुष्य और देव गति रूप ससार की परिधि मे परिभ्रमण करते हैं।

ससार-सागर—ससार रूपी सागरमे जन्म-जरा-मरण रूपी गभीरता है। इसमे दु.ख रूपी क्षुब्ध जल है। सयोग-वियोग रूप चढाव-उतार होते रहते हैं। चिन्ता के प्रसग सर्वत्र फैले हुए हैं। वध-बन्धन रूप बड़ी बडी लहरें लहराती हैं। करुणा जनक शब्द और लोभ की किलबिलाहट की तीव्र ध्वनि श्रुति गोचर हो रही है। अपमान रूप फैन उछलते रहते हैं। तीव्र निदा, अनेक रोगों की निरन्तर वेदना, पराजय, पतन, निष्ठुर वचन और भर्त्सना, उत्पन्न करने वाले कठोर कर्म रूपी पाषाण से इसमें तरगे उठती रहती हैं। इसमे मृत्युभय रूप सपाट पानी सदा बना रहता है। यह चार कषाय रूप पाताल कलशों से व्याप्त है। लाखों भव रूप जलका इसमें कहीं अन्त नहीं आता। यह उद्वेग-जनक है। इसका आर-पार नहीं है। महान् भय को उत्पन्न करता है। डरावना है। परिमाण-रहित है। यह बड़ी-बड़ी इच्छाओं और मलिन बुद्धि रूप वायु के वेग से उछलता रहता है। आशा और पिपासा इस समुद्र का तल है। इसमें काम, राग, द्वेष, बन्धन, विविध प्रकार की चिन्ता रूपी जल के फुहारे उड़ते रहते है। इन फुहारों से अन्धकार छाया रहता है। यहाँ मोह के भँवर हैं। और कामभोग गोलाकार घूमता है। जैसे समुद्र मे मछलियाँ ऊँचे-नीचे एव इधर-उधर दौडती रहती हैं उसी प्रकार यहाँ गर्भ में जीव ऊँचे-नीचे गिरता रहता है। ससार में कष्टपूर्ण मनुष्यों के रोदन रूप प्रचण्ड आधी से मलिन सकल्प रूपी तरगें उठती रहती है। यहा व्याकुल तरगों से टकराकर फैलने वाला और अनिष्ट उतार-चढावों से व्याप्त जल भरा हुआ है। प्रमाद ही यहाँ भयकर और क्षुद्र हिंसक प्राणियों के समान है। उनके उपद्रव से उठते हुए मत्स्य रूपी मनुष्यों के समूह इस

संसार-समुद्र में रहे हुए हैं। इसमें के मत्स्य रूप मनुष्य अत्यन्त रुद्र हैं, महारक हैं, अनेक अनर्थों के जनक हैं। यहां अज्ञान रूप भ्रमण करने वाले दक्ष मत्स्य हैं। अनुपशान्त इन्द्रियों वाले पुरुष रूप बड़े-बड़े मगरों की चपल चेष्टाओं से समुद्र क्षुब्ध हो रहा है। इसमें संताप रूप वड़वाग्नि सदा अति चपलता के साथ धधक रहा है। जिनके पूर्व कर्म उदय में आये हैं ऐसे अत्राण और अशरण मनुष्यों का सैंकड़ों दुःख विपाक रूपी जल इस समुद्र में घूम रहा है। ऋद्धि-रस-सुख के सम्बन्धी गर्व के अशुभ अध्यवसाय रूप जलचरों से गृहीत, कर्मों से युक्त जीव समुद्र के नरक रूप तल की ओर खिंचे जा रहे हैं और फँस रहे हैं। यह अरति रति-भय-विषाद-शोक एवं मिथ्यात्व रूपी पर्वतों से संकीर्ण है कर्म-बन्धन उसकी अनादिकालीन सन्तान हैं। नाना क्लेश रूप पङ्क में व्याप्त होने के कारण दुस्तर है। देव मनुष्य-तिर्यंच-नारकी इन चार गतियों में जाना इसका चक्र के समान परिवर्त्तन है, और विपुल जल की वेला है। हिंसा-मृषावाद-अदत्तादान-अब्रह्मचर्य- परिग्रह का आरम्भ करते कराते और अनुमोदन करते हुए बांधे गये आठ प्रकार के अशुभ कर्मों के समूह से भारी भार हो जाने के कारण विषम जल-राशि प्राणियों को डुबाकर ऊँचे-नीचे उछालना है उस संसार का तल ऐसा भीषण है। शारीरिक और मानसिक दुःख पाते हुए साता होना, असाता होना, सन्ताप होना ही ऊँचे और नीचे जाना है। यह संसार रूपी समुद्र चार गति रूप, विशाल और अनन्त विस्तार वाला है। जिन्होंने संयम में निष्ठा प्राप्त नहीं की उन्हें इस समुद्र में और कोई अवलम्बन नहीं है। कोई आधार नहीं है। यह संसार सागर अप्रमेय है, चौरासी लाख जीव योनियों का स्थान है। यहाँ अज्ञान रूप अन्धकार है। अनन्तकाल पर्यन्त नित्य कष्ट पाने वाले, भय और संज्ञासे युक्त जीव इस संसार में भ्रमण करते हैं।

पर धन हारी का पुनर्जन्म—उद्वेग से परिपूर्ण जिन-जिन निवास-स्थानों में यह जीव उत्पन्न होते हैं वहाँ इन पापात्मा जीवों के बन्धु-

बान्धव, स्वजन और मित्र गण भी इनका परित्याग कर देते हैं। उनके अप्रिय वचनों को कोई स्वीकार नहीं करता। वह अविनीत्त असदाचारी होते है। उन्हें अनिष्ट स्थान -आसन-शयन-भोजन की प्राप्ति होती है, अशुचि शरीर होता है। शरीर का सहनन, प्रमाण, सस्थान और रूप कुत्सित होता है। उनमे अतिशय क्रोध, मान माया लोभ और मोह होता है। वह धर्मसज्ञा और सम्यक्त्व से भ्रष्ट होते हैं, दरिद्रता और उपद्रवों से त्रस्त रहते है। उन्हें सदा दूसरों की सेवा करनी पड़ती है। वे अजीविका से रहित, दीन और भिखारी होते हैं। उन्हें बड़ी कठिनाई से आहार मिलता है, और अरस-विरस भोजन मिलने से वे पेट भी पूरा नहीं भर पाते हैं। वे दूसरों की ऋद्धि-सत्कार-भाजन आदि वैभव को देखकर पूर्वभव मे अपने किये हुए और उदय में आये हुए पाप कर्मों की तथा उनके कारण होने वाले दु खों की निन्दा करते हैं। वे दीनता और दु ख मे सलप्त होकर दु:ख भोगते हैं। वे नि सत्व और निस्सहाय, शिल्प-चित्र आदि कलाओं के तथा शास्त्रों के ज्ञान से हीन होते हैं और पशु के समान उनका जीवन होता है। वे अविश्वास के पात्र तुच्छ कार्यों मे अर्जीविका उपार्जन करने वाले तथा लोक निन्दनीय होते हैं। उनमे मोह, मनोरथ तथा अभिलाषा बहुत होती है पर वह सब निष्फल जाती है। आशा के पाश में बन्धे हुए वे जीव जगत में प्रधान समझी जाने वाली धन और काम भोग की प्राप्ति के लिये भरसक उद्योग करते हैं परन्तु असफल होते हैं। प्रतिदिन उद्यम करते हुए, अत्यन्त क्लेश सहन करने पर भी वे पेट भर धान्य का सग्रह नहीं कर सकते। सदा द्रव्य हीन, अस्थिर धन धान्य के उपभोग से रहित, कामभोग और अन्य समस्त सुखों से शून्य तथा दूसरो की लक्ष्मी का आश्रय लेने वाले होते हैं। वे बेचारे इच्छा न होने पर भी पराधीन होकर दु ख उठाते हैं। सुख और आनन्द उन्हें कभी नसीब नहीं होता। वे सैकड़ो प्रकार के नित्य नए दु:खों से दग्ध होते रहते हैं।

जो लोग पराये धन के ग्रहण करने से निवृत्त नहीं हुए हैं वे अद-त्तादान के फल-विपाक को इस लोक और परलोक में प्राप्त करते हैं। वह फल-विपाक महा भय का कारण है और प्रगाढ़ कर्म मल को उत्पन्न करता है। वह रौद्र है, कठोर है असाता का कारण है और हजारों वर्षों तक भी भोगे बिना छूटने वाला नहीं है। उसे भोगने से ही छुटकारा मिलता है।

इस प्रकार सिद्धार्थनन्दन, महात्मा वीतराग महावीर स्वामी ने कहा है।

चौथा अध्याय

चतुर्थ आस्रव द्वार—अब्रह्मचर्य

श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं—हे जम्बू ! यह अब्रह्म नामक चौथा अध्ययन है। यह चौथा अधर्म द्वार—अब्रह्म, देव मनुष्य और असुर लोगों द्वारा अभिलषणीय है। यह कीचड - कादा, पाश और मछली आदि को फँसाने वाले जाल के समान है। स्त्री-पुरुष नपुन्सक का लक्षण स्वरूप है। तप, सयम और ब्रह्मचर्य का घातक है। यह चारित्र का भङ्ग करने वाला और नाना प्रमादों का मूल-कारण है। कायर और नीच पुरुष इसका सेवन करते हैं, सत्पुरुषों द्वारा त्याज्य है, ऊर्ध्वलोक-स्वर्ग में, नरक मे, मध्य लोक में—अर्थात् तीनों लोकों में वह वर्त्तमान है। जरा-मरण-रोग-शोक की वृद्धि करने वाला है। वध, बन्धन और विघात के द्वारा भी इसका परित्याग नहीं होता है। दर्शन-मोहनीय और चारित्र-मोहनीय का कारण है। चिरकाल से सतत सेवन किया जा रहा है और दुष्परिणाम जनक है।

अब्रह्म के नाम—अब्रह्म के यह तीस सार्थक नाम हैः—

(१) अब्रह्म (२) मैथुन (३) चरत्—विश्वव्याप्त (४) ससर्गि—स्त्री-पुरुष के ससर्ग से जन्य (५) सेवनाधिकार—पाप-प्रवर्त्तक (६) स-कल्प—सकल्प-विकल्प का कारण (७) पदाना बाधना—सयम का

घातक (८) दर्प—देहिक गर्व उत्पन्न करने वाला (९) मोह (१०) मन-सक्षोभ—मन को क्षुब्ध करने वाला (११) अनिग्रह—मन का निग्रह न करना (१२) विग्रह—कलह का कारण (१३) विघात—गुणों का घातक (१४) विभग—गुणो की विराधना (१५) विभ्रम—भ्रम रूप (१६) अधर्म (१७) अशीलता (१८) ग्रामधर्म तप्ति—इन्द्रिय विषयों का गवेषण (१९) रति (२०) राग (२१) कामभोग—मार (२२) वैर (२३) रहस्य—एकान्त का कार्य (२४) गुह्य—गोपनीय (२५) बहु-मान—अधिकाश प्राणियों द्वारा अनुमत (२६) ब्रह्मचर्य विघ्न (२७) व्यापत्ति—गुणो से भ्रष्ट होना (२८) विराधना (२९) प्रसग—काम— भोग मे मग्न होना (३०) कामगुण—कामदेव का कार्य। यह अब्रह्म के तीस नाम है।

अब्रह्म-सेवी—वैमानिक देव अप्सराओ के साथ मोह से मोहित-मति होकर अब्रह्म का सेवन करते है। असुरकुमार नागकुमार, सुवर्ण कुमार, विद्युत्कुमार अग्निकुमार द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, पवनकुमार और स्तनितकुमार—ये भवनवासी देव उसका सेवन करते है। आणपन्निक, पणपन्निक, ऋषिवादी भूतवादी, क्रन्दित महाक्रन्दित कूष्माण्ड और पतङ्ग—ये आठ व्यन्तर एव पिशाच भूत, यक्ष राक्षस, किन्नर, किंपुरुष महोरग, गन्धर्व—ये तिर्यक् लोक मे रहने वाले देव उसका सेवन करते है। ज्योतिषी, वैमानिक, मनुष्य, तथा जलचर, स्थल-चर, खेचर तिर्यंच मोह से आसक्त चित्त वाले है, विषयो की तृष्णा से युक्त है, काम भोग की तृषा से आतुर है, सबल और महान् विषय-तृष्णा से पीड़ित हैं, विषयों मे फँसे हुए है अत्यन्त मूर्छित हो रहे है, अब्रह्म मे गृद्ध हैं, अज्ञान से युक्त है, काम और भोगो का सेवन करते हुए दर्शनमोहनीय एव चारित्र मोहनीय कर्म के पीजरे मे बद्ध है।

भवनपति, वाण व्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक देवता, तिर्यंच और मनुष्य काम भोगो में आसक्त होकर विविध प्रकार की क्रीडाएँ

करते हैं देवों तथा राजाओं द्वारा आराधनीय चक्रवर्ती भी अब्रह्म का सेवन करता है।

अब्रह्मचारी चक्रवर्त्ती—जैसे देवता देव लोक में विराजता है उसी प्रकार चक्रवर्त्ती भरत क्षेत्र में विराजमान होता है। भरत क्षेत्र में पर्वत, नगर निगम जनपद, पुर द्रोणमुख खेटक (खेडा) कर्बट मडंब, संवाह पट्टन, आदि हजारों स्थान हैं। ऐसी पर चक्र के भय से रहित सागर सहित पृथ्वी को एक छत्र भोगने वाला चक्रवर्त्ती मनुष्यों में सिंह के समान मनुष्यों का स्वामी मनुष्यों में इन्द्र के समान, मनुष्यों में वृषभ के समान—श्रेष्ठ, मारवाड के बैलों के समान भारवाहक और अतिशय राज तेज एव लक्ष्मी से देदीप्यमान है। वह सौम्य है और राजवंश में तिलक के समान है। उसका शरीर नाना प्रकार के शुभ चिह्नों से अंकित होता है। जैसे—सूर्य, चन्द्रमा शख, सुन्दर चक्र, स्वस्तिक ध्वजा जौ, मत्स्य, कछुवा, रथ, श्रेष्ठ योनि, भवन विमान, अश्व, तोरण, गोपुर, मणि, रत्न नन्दावर्त (नौ कोने का स्वस्तिक), मूसल, हल, सुन्दर कल्पवृक्ष, सिंह भद्रासन सुराव (एक प्रकार का आभूषण) स्तूप, सुन्दर मुकुट, मुक्तावलि, कुण्डल हाथी सुन्दर वृषभ द्वीप, मेरु पर्वत, गरुड, ध्वजा, इन्द्रध्वजा, दर्पण, अष्टापद (बाजौठ), धनुष, बाण, नक्षत्र, मेघ, स्त्री की करधनी, वीणा, यूप (जुआँ) छत्र, माला, दामिनी, कमण्डलु, कमल घण्टा, सुन्दर वाहन, सुई, सागर, कुमुदवन, मगर, हार, गागर भञ्झर, पर्वत, नगर, नूपुर, वज्र, किन्नर, मयूर, राजहंस, सारस, चकोर, चक्रवाक युगल, चामर, खेटक (फलक) सितार, सुन्दर-पंखा. लक्ष्मी का अभिषेक, पृथ्वी, खड्ग, अङ्कुश, निर्मल कलश, भृङ्गार, वर्धमानक (सिकोरा) सुन्दर पुरुष।

बत्तीस हजार राजा चक्रवर्ती के पीछे-पीछे चलते हैं। चौंसठ हजार सुन्दरी युवतियों का वह नयनाभिराम है। उन स्त्रियों की कान्ति लाल-वर्ण है, उनका देह कमल के गर्भ के समान गौर-वर्ण होता है। वे

कौरण्टक फूल की माला गले में पहिनती है। उनके शरीर का वर्ण ऐसा है मानो चम्पा का फूल हो या कसोटी के पत्थर पर तपाये हुए सोने की लकीर करदी हो। सब अवयव सुघड होने से उनका अङ्ग सुन्दर होता है। मूल्यवान् और महान विविध नागरिक रङ्गरागों को चक्रवर्ती भोगता है। मृगी-चर्म को कमाकर बनाये हुये एवं वृक्ष की छालका सूत बनाकर उससे तैयार किये गये वस्त्रों को चक्रवर्ती पहनता है। वह चीनी वस्त्रों को धारण करता है। कमर पर कटिसूत्र पहन कर अपना अङ्ग सजाता है। वह मधुर सुगंध वाले कस्तूरी आदि के चूर्णों से अङ्ग को सुवासित करता है। मस्तक पर सुगन्धित सुन्दर पुष्प सिंगारता है। कुशल कारीगरों द्वारा निर्मित सुखद माला, कङ्कन, बाजूबन्ध, बहुरक्षक आदि अलङ्कारों को धारण करता है। गले में एकावलि हार पहिन कर उरस्थल को सुशोभित करता है। पास-पास लटकने वाले दोनों उत्तरीय वस्त्रों को सुन्दरता के साथ धारण करता है। सुवर्ण मुद्रिकाएँ अँगुलियों में धारण करता है। इस प्रकार के उज्ज्वल वेश से विराजमान चक्रवर्ती सूर्य के समान देदीप्यमान दिखाई देता है। उसका शब्द नवीन मेघ के समान मधुर, गम्भीर और स्निग्ध होता है। वह समस्त—चौदह रत्नों का स्वामी है। नव निधियों का अधिपति है। उसके भण्डार भरे रहते हैं, एक दिशा में पर्वत और तीन दिशाओं में सागर पर्यन्त उसका साम्राज्य है। जहाँ वह जाता है वहा चतुरंगिनी सेना साथ रहती है। अश्वपति, गजपति रथपति और नरपति आदि का उसका विपुल सैन्य है। उसका मुख शरदकाल के चन्द्रमा के समान सौम्य होता है। चक्रवर्ती शूरवीर होते हैं और उनका प्रभाव तीनों लोकों में व्याप्त रहता है, विख्यात रहता है। चक्रवर्ती षट् खंड भरत क्षेत्र के स्वामी होते हैं। पर्वत-वन-कानन और चूल हिमवन्त से लगा कर सागर के अन्त तक भरत क्षेत्र को भोगकर जिन्होंने शत्रुओं को जीत लिया है, जो राजवंशियों में सिंह के समान हैं, वे चक्रवर्ती पहले किये हुए तप के प्रभाव से संचित सुख को हजारों वर्ष की आयु तक,

हजारों स्त्रियों के साथ भोगते हुए, समस्त भरत क्षेत्र के उत्तम पुरुषों पर अधिकार चलाते हुए अनुपम शब्द-स्पर्श-रस रूप और गन्ध का उपभोग करते हुए भी काम-भोगों से अतृप्त रहकर ही मरण-शरण होते हैं।

अब्रह्मचारी बलदेव-वासुदेव—बलदेव और वासुदेव भी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। वे श्रेष्ठ पुरुष हैं, विपुल बल-पराक्रम के धारी, महान् धनुष का टंकार करने वाले, महा साहस के सागर, विरोधियों द्वारा अजेय, धनुर्धर और पुरुषों में प्रधान हैं। ये राम* (बलदेव) और केशव (वासुदेव) दोनों भाई परिवार सहित हैं। वसुदेव और समुद्रविजय आदि दस दशार्ह के हृदय-वल्लभ हैं। प्रद्युम्न कुमार, प्रदीप कुमार, शम्ब-कुमार, अनिरुद्ध कुमार, नैषधकुमार, उल्मुखकुमार, सारणकुमार, गज-कुमार, सुमुखकुमार, दुर्मुखकुमार आदि यादवों के साढे तीन करोड़ कुमारों के हृदय के वल्लभ हैं। महारानी रोहिणी (बलभद्र की माता) महारानी देवकी (केशव की माता) के हृदय को आनन्द देने वाले हैं। सोलह हजार प्रधान राजा उनके पीछे-पीछे चलते हैं। सोलह हजार रानियों के हृदय और नयनों के प्यारे हैं। नाना भाँति के मणि, सुवर्ण, रत्न, मोती, मूगा, धन, धान्य आदि ऋद्धि के संग्रह से उनके कोषागार भरपूर रहते हैं। हजारों घोड़ों, हाथियों और रथों के स्वामी हैं। हजारों ग्राम, आकर, नगर, खेडा, मडप, द्रोणमुख, पाटन, आश्रम, संवाहरूप निर्भय होकर सुख-समाधि और आनंद भोगने वाले विविध लोगों से व्याप्त पृथ्वी-सरोवर-नदी-तालाब-पर्वत-कानन-बाग और उद्यान से नेत्रों को आनन्द पहुँचाती है। इस प्रकार के आधे भरत क्षेत्र के वे स्वामी हैं। दक्षिणार्ध भरत वैताढ्य पर्वत पर्यन्त है और तीन ओर से लवण समुद्र से घिरा हुआ है। छह ऋतुओं के गुण-कर्म से युक्त है। ऐसे भरतार्ध के अधिपति, धैर्यशाली और कीर्तिमान पुरुष हैं। अच्छिन्न

---

*यह नाम निर्देष पूर्वक वर्णन वर्तमान अवसर्पिणी काल की अपेक्षा से है। वैसे तो प्रत्येक काल चक्र में यह पदवी धर होते हैं।

बल के धारी हैं, अत्यन्त बलवान् हैं। वे किसी से मारे नहीं जा सकते, जीते नहीं जा सकते। वे शत्रु का मान मर्दन करने वाले हैं, सहस्रों शत्रुओं का संहार करने वाले हैं, दयालु हैं, मात्सर्य चपलता और रुद्रता से रहित हैं। कोमल स्वर से बोलते हैं, हंसमुख हैं, गम्भीर वचन बोलते और अभ्यागत के प्रति वात्सल्य भाव रखते हैं। शरणागत के रक्षक, सामुद्रिक लक्षण व्यंजन आदि के धारक मानोन्मान-प्रमाण से युक्त अर्थात् १०८ अँगुल परिमित परिपूर्ण और सर्वाङ्ग सुन्दर हैं। चन्द्रमा के समान सौम्याकार के धारक, मनोहर और प्रियकर दर्शन वाले हैं। कार्य में उद्यमी हैं दुस्साध्य के साधक हैं, अपनी आज्ञा के अनुसार सेना का सञ्चालन करते हैं, चेहरे से गम्भीर हैं। उनकी (बलदेव की) ध्वजा ताल वृक्ष के चिह्न से अङ्कित है और (वासुदेव की) गरुड़ध्वजा के चिह्न से अङ्कित है। उसे फहराते हैं। अति बलवान् हैं, (कौन हमारा सामना कर सकता है ? ऐसी) गर्जना करने वाले हैं, अति दर्पवान् हैं। (बलदेव) मुष्टी से लड़ने वाले मल्ल को चूर्ण करने वाले हैं, (वासुदेव) चाणूर नामक मल्ल का गर्व खर्व करने वाले हैं, राजा कंस के रिष्ठ नामक उन्मत्त बैल के संहारक हैं (प्रथम वासुदेव) केसरी के मुख को फाड़कर मारने वाले हैं अथवा कंस के केशी नामक अश्व का संहार करने वाले हैं, अत्यन्त अहङ्कारी नाग (कालिया) का मथन करने वाले हैं, यमल और अर्जुन नामक वृक्षों को छिन्न-भिन्न करने वाले हैं, महाशकुनि और पूतना विद्याधरी के वैरी हैं, कंस के मुकुट को मोडने वाले, जरासंध का मान मर्दन करने वाले हैं। उनके छत्र अवि-रल, सम और अनम्र शलाकाओं के कारण चन्द्रमा के मण्डल के समान और सूर्य की सी किरणों के समूह को फैलाने वाले हैं। भारी होने के कारण उन्हें सँभालने के लिए एक और डंडा लगा रहता है। ऐसे धारण किये जाने वाले छत्रों से वे विराजमान हैं। तथा बड़े बड़े पर्वतों की गुफाओं में विचरने वाली, गायों की अक्षत पूँछ से उत्पन्न

होने वाले—निर्मल-स्वच्छ और खिले हुए कमल के समान उज्ज्वल चामरों मे विराजमान हैं। ये चामर रजतगिरि के शिखर के समान विमल हैं, चन्द्रमा की किरणों के ममान उज्ज्वल हैं, स्वच्छ चादी के समान निर्मल हैं, पवन से चचल हुए पानी म नाचने वाले उतार-चढाव के कारण क्षीर सागर मे उठने वाली लहरो के ममान चचल हैं। तथा मानमरोवर मे वसने वाली निर्मल आकार वाली सुवर्ण-पर्वत पर बैठी हुई और चपल गति मे ऊपर-नीचे उड़ती हुई हमिनी के समान हैं। ये चामर नाना प्रकार के मणि, रत्न, मूल्यवान् और तपाये हुए सोने मे निर्मित डण्डों से शोभित हैं, इम प्रकार के लालित्य से युक्त चामर राज-लक्ष्मी को प्रगट करते हैं। विशाल नगरों मे तैयार होने वाले और समृद्ध राजाओं द्वारा मेवन किये जाने वाले काले अगर और शिला-रम आदि सुगधित द्रव्य जैसे दस प्रकार के धूप मे सुवासित उनके स्थान महकते रहते हैं। दोनों तरफ चॅवरों के सुखकारी शीतल वायु उनके अङ्गों पर किया जाता है। वे अजित हैं, अजित रथ वाले हैं। (बलदेव) हल, मूसल और वाण को धारण करते हैं, और (वासुदेव) पाच्यजन्य शख, सुदर्शन चक्र, कौमुदी गदा, त्रिशूल और नदन खड्ग धारण करते हैं। सुदर, उज्ज्वल, उत्तम, विमल कौस्तुभ मणि वक्ष-स्थल पर धारण करते हैं, और मस्तक पर मुकुट पहनते हैं। उनका चेहरा कुण्डलों से शोभायमान होता है, नेत्र सफेद कमल के समान होते हैं, कण्ठ में एकावलि हार शोभित होता है, और श्रीवत्स उनका चिह्न है। इस प्रकार वे यशस्वी हैं। उनका वक्षस्थल समस्त ऋतुओं के सुगन्धित फूलों से बनी, लम्बी, विकसित और चित्र-विचित्र मालाओं से सुशोभित होता है। उनके अङ्गोपाग एक सौ आठ प्रशस्त सुन्दर लक्षणों से युक्त होते हैं। उनकी गति मदोन्मत्त ऐरावत हाथी की लीला युक्त गति के के समान होती है। कटिसूत्र के साथ (बलदेव) नीले और [वासुदेव] पीले वस्त्र पहनते हैं, और तेज मे दीप्तिमान होते हैं। शरद् ऋतु के

नये मेघ की गर्जना के समान मधुर-गम्भीर और स्निग्ध शब्दों का उच्चारण करते हैं। मनुष्यों में सिंह के समान पराक्रम शाली हैं और सिंह के समान गति शील हैं। ऐसे बलदेव-वासदेव भी चल बसे। बड़े-बड़े राजाओं मे सिंह के समान, सौम्य द्वारिका नगरी के पूर्ण चन्द्र (आह्लाद-करने वाले) पूर्व कृत तप के प्रभाव से सचित शुभकर्मों को सैकड़ो वर्षों तक स्त्रियों के साथ भोगते हुए भी, लोक मे प्रधान सुखों में विलास करते हुए भी, अनुपम शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्ध को भोगते हुए भी काम-भोगो मे तृप्त हुए विना ही वे मृत्यु के वश होते है।

अब्रह्मचारी राजा — माडलिक नरेन्द्र सेना का स्वामी, अन्त पुर वाला, परिषद् (परिवार) वाला और पुरोहित सहित होता है। उसके अमात्य और सेनापति मन्त्रणा और नीति मे निपुण होते हैं। नाना भाँति के मणि-रत्न और विपुल धन-धान्य का उसके भडार मे सचय होता है। वह विशाल राज-लक्ष्मी को भोगते हुए भी, अहङ्कार से गर्जना करते हुए भी, बल से मत्त होने पर भी काम भोगों मे अतृप्त रहकर ही चल बसता है।

अब्रह्मचारी जुगलिया—देवकुरु और उत्तरकुरु के वन-विवरों में पैदल चलने वाले मनुष्यों की जो समुदाय है वह भोगों की दृष्टि मे उत्तम है। वे भोग भूमिया भाग-सूचक स्वस्तिक आदि चिह्नों से युक्त हैं, भोगों से शोभित हैं, प्रशस्त-सौम्य और प्रति पूर्ण रूप वाले होने के कारण दर्शनीय हैं, सुघड अवयव वाले होने से सर्वांग सुन्दर हैं, उनके हाथ-पैरो के तल लाल कमल के समान हैं, सुन्दर कछुवे के समान उनके पैर हैं, क्रमश चढाव-उतार वाली पुष्ट उनकी ऊँगलियाँ हैं। उनके नख उन्नत, पतले, लाल और चिकने होते हैं। उनकी गुल्फ (पैर की गांठ) सुघड़, सुन्दराकार और मासल होती हैं। उनकी दोनों जाघे अनुक्रम से मोटी होती हैं, मानों हिरनी की जाघों पर कुरुविन्द (तृण विशेष) के आवर्तक पड़े हों। पेटी के समान अनुन्नत—मास से पुष्ट उनके घुटने

होते हैं। उनकी गति उत्तम मदोन्मत्त हाथी के समान विलास युक्त है। उनका गुह्य अग घोड़े के गुह्य अग के समान है। उनका देह जाति-वन्त घोड़े के समान निर्मल और हर्ष-शील है। उनकी कमर घोडे और सिंह से भी अधिक गोल होती है। उनकी कटि गगा के आवर्त के समान, दक्षिणावर्त के समान, तरग-भग के समान और सूर्य की किरणों से विक-सित हुए कमल के समान गम्भीर और विकट है। उनके शरीर का मध्य, भाग त्रिकाष्ठिका (तिपाई) के समान, मूसल के समान, दर्पण के समान, निर्मल किये हुए सुन्दर सुवर्ण से निर्मित तलवार की मूठ के समान और वज्र के समान पतला होता है। उनकी रोमराजि सरल, प्रमाणयुक्त, घनी, स्वाभाविक सूक्ष्म, काली, स्निग्ध, शोभायुक्त, मनोहर, सुकुमार और कोमल होती है। उनकी कुक्षि (कूख) मत्स्य और पक्षी के समान सुन्दर और पुष्ट होती है। उनका उदर मत्स्य के समान, नाभि कमल के समान, और पसवाड़े (बगल) नीचे-नीचे नम्र, सुन्दर, निर्माण युक्त, प्रमाणोपेत एव मासल होते हैं। उनकी पीठ ऐसी पुष्ट होती है कि हाड़ बाहर नहीं दिखाई देते। सोने के समान कान्ति वाले, निर्मल, सुन्दर और नीरोग शरीर के धारक होते हैं। उनकी छाती सोने की शिला के समान, प्रशस्त, अविषम, मासल, चौडी और मोटी होती है। उनके पोहचे जूवा के समान, मासल, रमणीय और मोटे होते हैं। उनकी हड्डियों की सधियाँ सुन्दराकार, अच्छी तरह जुडी हुई, विशिष्ट, मनोज्ञ, सुनिश्चित, विशाल, दृढ और सुबद्ध होती हैं। उनकी भुजाएँ ऐसी मोटी होती हैं मानो किसी विशाल नगर के फाटक की अर्गलाएँ हों। उनके बाहु ऐसे लम्बे हैं जैसे नागराज का लम्बा शरीर अपने स्थान से बाहर निकला हो, इस प्रकार रमणीय और गोल हैं। उनके हाथ लाल-लाल हथेली वाले, कोमल, मासल, शुभ लक्षण युक्त, प्रशस्त और सघन उँगलियों से युक्त होते हैं। उनकी हाथ की उँगलियाँ पुष्ट, सुन्दर और कोमल होती हैं। उनकी उँगलियों के नाखून

लाल, पतले पवित्र रुचिर और स्निग्ध होते हैं। हाथ में चन्द्र, सूर्य, शंख, चक्र तथा दक्षिणावर्त स्वस्तिक की तरह रेखाएं हैं और उनकी जुदी-जुदी रेखाएँ हैं। उनके कन्धे महिष शूकर सिंह, शार्दूल वृषभ और हाथी के समान विस्तीर्ण हैं। उनकी ग्रीवा चार अंगुल की और शंख सरीखी होती है। यथावस्थित और शोभायुक्त मूंछें होती हैं और मांसल सुन्दर प्रशस्त एव सिंह के समान विस्तीर्ण दाढ़ी होती है। उनका नीचे का होठ मूँगे के समान तथा पके हुए बिम्बाफल के समान लाल होता है। उनके दांतों की कतार चन्द्रमा के टुकड़े के समान निमल शंख के समान गाय के दूध के समान समुद्र के फेन के समान कुन्द के फूल और पानी के बूंद के समान एव कमल के समान सफेद होती है। परिपूर्ण अस्फुटित अविरल स्निग्ध और सुजात एक-एक दांत के समान अनेक दांतों की पंक्ति है। उनका तालु और जीभ निर्मल और तपाये हुए सोने के समान है। उनकी नासिका गरुड़ की चोंच के समान लम्बी सरल और ऊँची है। उनके नयन खिले हुए पुंडरीक-कमल के समान हैं। उनकी आँखे खिली हुई सफेद और बरौनियों से युक्त हैं। उन की भौंहें कुछ-कुछ झुके हुए धनुष के समान मनोहर मेघ की काली रेखा के समान सस्थित एक सरीखी लम्बी और सुन्दर हैं। उनके कान सुंदर और कर्णपुट भी सुन्दर हैं। उनके गाल पुष्ट और मांसल हैं। नवोदित बाल-चन्द्रमा के समान उनका ललाट होता है। उनका वदन-चेहरा चन्द्रमा के समान परिपूर्ण तथा सौम्य है। उनका मस्तक छत्राकार होता है, और वह लोहे के घन के समान दृढ स्नायु-युक्त, उन्नत शिखर वाले घर के समान गोल होता है। केशों का अन्त-भाग और मस्तक की चमड़ी, अग्नि में तपाए हुए निर्मल सुवर्ण के समान लाल है। उनके केश सेमल के अत्यन्त पुष्ट और विदारित फल के समान मुलायम, विशद, प्रशस्त, सूक्ष्म, लक्षणयुक्त, सुगन्धित सुन्दर, भुजमोचक रत्न के समान (काले) भ्रमर-नीलम-काजल-भौंरों के समूह—के समान,

स्निग्ध, लटो वाले, घुघराले, दक्षिणावर्त्त मुड़े हुए होते हैं। उनके अग सुनिष्पन्न, सुविभक्त, एक-दूसरे से सगत और लक्षणों एव व्यजनों से युक्त होते हैं। वे बत्तीस शुभ लक्षणों को धारण करने वाले हैं। उनका स्वर हस-क्रौंच-दुन्दुभि-सिंह-मेघ-और मनुष्यों के समूह के स्वर के-समान होता है। उनकी ध्वनि सुदर स्वर सहित होती है। वे वज्रऋषभनाराच के धारक और सम चतुरस्त्रसंस्थान से सस्थित हैं। उनके अगोपाग काति और उद्योत वाले होते हैं। उनके शरीर की चमड़ी रोम रहित होती है। उनकी गुदा कक पक्षी के समान निर्लेप होती है। कबूतर के समान वे आहार को पचा लेते हैं। उनका अपान शकुनि पक्षी के समान अर्थात् पुरीषोत्सर्ग में लेप रहित होता है। उनके श्वास का गध पद्म कमल और नील कमल के समान होता है, उससे वदन भी उनका सुरभिमय होता है। उनके शरीर के वायु का वेग मनोहर होता है। उनका उदर प्रदेश गौर वर्ण, तेजस्वी, कृष्ण और उनके शरीर के अनुरूप होता है। वे अमृत रस के समान फलों का आहार करते हैं। तीन कोस लम्बे शरीर वाले होते हैं, तीन पल्योपम की स्थिति है, तीन पल्योपम की उत्कृष्ट आयु है। ऐसे जुगलिया भी अन्त में कामभोगों से तृप्त हुए बिना ही स्वर्ग सिधार जाते हैं।

(*जुगलिया स्त्री का वर्णन—*)इन जुगलियो की स्त्री भी सौम्य आकार वाली और सुघट सर्वअगो से सुन्दरी होती हैं। उत्तम स्त्रियो के समस्त गुण उनमें पाये जाते हैं। उनके पैर अत्यन्त कमनीय, विशिष्ट परिमाण युक्त, मुलायम, सुकुमार और कछुवे के आकार के समान सुन्दर होते हैं, उनके पैरों की उँगलियाँ सरल, मृदु, पुष्ट और घनी होती हैं। उनके नख उन्नत, सुखद, पतले, लाल, स्वच्छ और चिकने होते हैं। दोनों जाघें रोम रहित, गोल, उत्तम, प्रशस्त, लक्षणयुक्त और रमणीय होती हैं। उनके घुटने सुनिर्मित एव अदृश्य होते हैं। उनकी अस्थियों की सन्धि मासल, प्रशस्त, और स्नायुबद्ध होती हैं। उनके उरु केले के

स्तम्भ से भी अधिक सुन्दर आकार वाले, व्रण रहित, सुकुमार, मुलायम कोमल, अविरल, एक सरीखे, लक्षणयुक्त, गोलाकार मासल और परस्पर सदृश होते हैं। उनकी कमर जूआ खेलने के एक पाट के समान रेखाओ से युक्त, प्रशस्त, विस्तीर्ण और चौडी होती है। उनकी कटि का पूर्व भाग वदन की लम्बाई से दुगुना (२४ अँगुल का), विशाल, पुष्ट और दृढ होता है।

उनका पेट वज्र के समान विराजित, प्रशस्त लक्षण वाला और कृश होता है। उनका मध्य भाग त्रिवली के कारण नमा हुआ और कृश होता है। उनकी रोमराजि सरल, प्रमाणयुक्त, स्वाभाविक पतली, अखण्ड, सतेज, शोभायुक्त, मनोहर, सुकुमार और मृदु होती है। उनकी नाभि गगा मे पड़ने वाले भवरों के समान, दक्षिणावर्त्त के समान, तरग भ्रम के समान और सूर्य की किरणों से खिले हुए कमल के समान गभीर और विकट होती है। उनकी कूख अनुद्भट, प्रशस्त, सुघड और पुष्ट होती है। उनके पार्श्व-भाग (वगले) नीचे झुके हुए अन्तरहीन, सुन्दर, रचना के गुणों से युक्त, परिमाण के अनुकूल, पुष्ट और रमणीय होते हैं। पीठ की हड्डी अदृश्य होती है। सोने के समान कान्ति वाला, निर्मल, सुजात, रोग रहित गात्र होता है। उनके स्तन सुवर्ण के कलशों के समान परिमाण युक्त, एक सरीखे, सुन्दर लक्षणों वाले, मनोहर शिखर वाले और समश्रेणियुक्त होते हैं। उनके बाहु सर्प के समान अनुक्रम वाले (मोटे-पतले), कोमल, गाय की पूछ के समान गोल, एक सरीखे, मध्य भाग में विरल, नम्र, रमणीय और ललित होते हैं। उनके नख (हाथों के) तांबे के समान लाल होते हैं। हाथ का अग्रभाग पुष्ट होता है। उँगलियाँ कोमल और मासल होती हैं। हाथ की रेखाएँ सतेज होती हैं। वे चन्द्रमा, सूर्य, शङ्ख, चक्र, स्वस्तिक जैसे शुभ लक्षणों से विराजमान होती हैं। काख और वस्ती प्रदेश पुष्ट और ऊँचा होता है। गाल परिपूर्ण और भरे हुए होते हैं। उनकी गर्दन

चार अगुल की, शख-से आकार वाली और रेखा युक्त होती है। उनकी ठुड्डी पुष्ट और सुन्दराकार वाली होती है। उनका नीचे का होठ अनार के फूल के समान लाल, भरा हुआ कुछ लम्बा, आकुंचित-सिकुड़ा और सुन्दर होता है। उनके दांत दही, पानी के बूद कुन्द के फूल चन्द्रमा, वासती की सुकुमार कली के समान निश्छिद्र और चमकदार होते हैं। उनका तालु और जीभ लाल कमल और लाल पद्म के पत्तों के समान सुकोमल है। उनकी नासिका कनेर की कली के समान बाँकी, ऊँची और सीधी होती हैं। उनके नयन शरद् ऋतु के नवीन कमल, कुमुद एव नील कमल के समूह के सदृश, सुलक्षण युक्त, प्रशस्त, निर्मल, मनोहर होते हैं। उनकी भौंहे थोड़े झुके हुए धनुष के समान, मनोरम, बादलों की काली रेखा के समान, एक सरीखी, सुनिष्पन्न, पतली, काली और सतेज होती है। उनके कान सुन्दराकृति, प्रमाण युक्त, और सुन्दर होते हैं। उनकी कनपटी भरी हुई और मुलायम होती है। उनका ललाट चारअगुल चौडा होता है। उनका चेहरा कार्तिकी पूर्णिमा के चद्रमा के समान निर्मल होता है। उनका मस्तक छत्र के समान होता है। उनके माथे के केश अत्यन्त काले, चमकदार और लम्बे होते हैं। छत्र, ध्वजा, स्तम्भ, स्तूप, दामनी, कमण्डलु, कलश, वापी, पताका, स्वस्तिक, जौ, मत्स्य, कछुआ, रथ, कामदेव, अङ्करत्न, थाल, अङ्कुश, अष्टापद (जुवा विशेष) का पाटिया, सुप्रतिष्ठक-स्थापनक (मिट्टी का एक पात्र विशेष) भ्रमर, लक्ष्मी का अभिषेक, तोरण, पृथ्वी, महासागर, उत्तम भवन, गिरिवर, दर्पण, मदोन्मत्त हाथी, वृषभ, सिंह और चामर ये बत्तीस लक्षण उनके शरीर पर होते हैं। उनकी गति हस सरीखी और वाणी कोयल सरीखी मधुर होती है। वे सबको कमनीय और प्रिय लगती हैं।

वे सफेद केश और कुरूपता से एव दुष्ट वर्ण, व्याधि, दुर्भाग्य और शोक से सर्वथा रहित हैं। ऊँचे पुरुष से ऊँचाई में थोड़ी छोटी होती हैं। उनका वेश श्रृङ्गार का आगार और सुन्दर होता है। सुन्दर स्तन, जघन

वदन, हाथ, पैर नेत्र, लावण्य, रूप और यौवन के गुण से युक्त है। यह जुगलतियाँ नन्दन वन में अप्सराओं की भाँति विहार करती है। उत्तर कुरु में मनुष्य रूप धारिणी अप्सरा जैसी चरित कर देने वाली, दर्शनीय यह जुगलिया-स्त्रियाँ-तीन पल्य की उत्कृष्ट आयु पाकर भी काम भोगों से तृप्ति नहीं हो पाती और अतृप्त रहकर ही स्वर्ग सिधार जाती हैं।

अब्रह्म के फल—मैथुन संज्ञा से दृढ और मोह में मग्न अब्रह्मचारी विषय रूपी विष की उदीरणा करते हुए एक दूसरे का शस्त्रों से घात करते हैं। कितने ही लोग परस्त्री के साथ प्रसंग करते हुए दूसरों के द्वारा मारे जाते हैं। बात प्रगट हो जाने पर उनके धन और स्वजन आदि का नाश होजाता है। जो लोग परस्त्री से निवृत्त नहीं हुये हैं मैथुन संज्ञा में मूर्छित हैं, जिनमें मोह भरा हुआ है ऐसे घोड़े-हाथी-साड-भैंसा-और मृग काम से व्याकुल होकर आपस में मारामारी करते हैं, इसी प्रकार कामी जन बन्दर और पक्षी भी आपस में विरोध करते हैं। मित्र शत्रु बन जाता है। परस्त्री सेवी पुरुष शास्त्र के अर्थ को, धर्म को, आचार परम्परा को गिनता ही नहीं है कुछ समझता ही नहीं है। धर्म में अनुरक्त ब्रह्मचारी भी परस्त्री-सेवन से क्षण-भर में चरित्र से भृष्ट हो जाता है। यशस्वी और कल्याणकारी व्रतों का आचरण करने वाला पुरुष इससे अपयश अपकीर्ति और व्याधि बढाता है। विशेष रोग से पीडा पाता है, और इस लोक एवं परलोक में दुराराधक होता है। जिन्हों ने, परस्त्री-गमन का परित्याग नहीं किया उनमें से कोई-कोई परस्त्री की तलाश करते हुए पकड़े जाते हैं, मारे जाते हैं और बेड़ियों द्वारा जकड़े जाते हैं। इस प्रकार तीव्र मोह-रूपी संज्ञा मैथुन का कारण है और उससे आक्रान्त जीव दुर्गति में जाते हैं। विभिन्न-शास्त्रों में सुना जाता है कि इसी की बदौलत पहले जनता का संहार करने वाले कई युद्ध हुए हैं। सीता, द्रोपदी, रुक्मिणी, पद्मावती, तारा, कांचना, रक्तसुभद्रा, अहल्या, सुवर्ण-

गुलिका, किन्नरी, स्वरूपवती, विद्युन्मति, रोहिणी इत्यादि अनेक स्त्रियो के लिए सग्राम हुए हैं। इस प्रकार के युद्ध अधर्म-विषय-मूलक हैं। अब्रह्म का सेवन करने वाला इसलोक से नष्ट होता है और परलोक से भी नष्ट होता है। वह महा मोह रूपी अन्धकार मे और घोर जीव-स्थानकों में पड़कर अपना नाश करता है। त्रस-स्थावर, सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त, साधारण-प्रत्येक शरीर तथा अडज, पोतज, जरायुज, रसज, सस्वेदज, सम्मूर्छिम, उद्भिज तथा नारकी देवताओं मे वे उत्पन्न होते हैं। नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव जातियों में जरा, मरण, रोग, शोक, से युक्त होकर, दु खों से भरे हुए ससार में बहुत सागरोपम पर्यन्त, अनादि-अनत और दीर्घ कालीन चार गतियों मे मोह के वश मे पडा हुआ जीव पुनः पुनः परिभ्रमण करता है।

अब्रह्मचर्यका ऐसा फल-विपाक है। अब्रह्मचर्य इह लोक परलोकमे अल्प सुख और विपुल दु ख देने वाला है, महाभय रूप है, बहुत से कर्म रूपी मैल से तीक्ष्ण है, दारुण है, कर्कश है, असाता का उत्पादक है, हजारों वर्षों में भी बिना भोगे न छूटने वाला है, उसे भोगने पर ही छुटकारा मिलता है। इस प्रकार सिद्धार्थनन्दन, महात्मा, वीतराग, महावीर स्वामी ने कहा है।

———

पाँचवाँ अध्याय

पञ्चम आस्रव द्वार—परिग्रह

श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं—हे जम्बू ! यहाँ से परिग्रह विषयक पाँचवाँ अध्ययन प्रारम्भ होता है।

नाना प्रकार के मणि, कनक रत्न, मूल्यवान्, सुगन्ध, पुत्र—सहित पत्नियाँ, परिवार, दासी, दास, कर्मचारी, चाकर, घोडा, हाथी, गौ भैंस, ऊँट गधा, बकरा, भेड़, पालकी, छकड़ा गाडी, रथ शय्या, आसन, वाहन, घर सामान, धन, धान्य पान, भोजन, वस्त्र, गन्ध, माला, वर्तन, भवन, इन सब को राजा भोगता है। बहुत प्रकार के भरत क्षेत्र को—जिसमें हजारों पर्वत, नगर, निगम, जनपद, पुर, द्रोणमुख खेटक, कर्वट, मण्डब, सम्बाह, पट्टन हैं—राजा निर्भय होकर, सागर सहित एक छत्र भोगता है फिर भी उसकी तृष्णा अपरिमित और अनन्त रहती है। उस तृष्णा से इच्छा रूपी परिग्रह-वृक्ष बढता रहता है। इस वृक्ष की नरक रूप मोटी-मोटी जड़ें हैं। लोभ-सग्राम और कषाय रूप बडा धड है। सैकडों चिन्ताएँ ही उस वृक्ष की सघन और विस्तृत शाखायें। हैं गर्व ही उसकी ऊपरी और बीच की प्रतिशाखायें हैं। माया उसकी छाल पत्ते और कौपले हैं। कामभोग उसके फूल और फल हैं और शारीरिक मानसिक खेद एव कलह यही उसका हिलता हुआ

शिखर है। राजा ऐसे परिग्रह रूप पेड की पूजा करता है। वह औरों को भी प्यारा लगता है। वह परिग्रह रूप पादप परिग्रह से मुक्त होने के लिए निर्लोभता रूप मार्ग के लिए बाधा है।

परिग्रह के नाम—परिग्रह के यथार्थ ३० नाम इस प्रकार है —

(१) परिग्रह (२) सचय–इकट्ठा करके सग्रह करना। (३) चय–इकट्ठा करना। (४) उपचय–ढेर कर रखना। (५) निधान–भूमि मे इकट्ठा कर रखना। (६) सभार–अच्छी तरह भर रखना। (७) सकर–मिलाकर रखना। (८) आदर–आदर के साथ रखना। (९) पिंड–पिड बनाकर रखना। (१०) द्रव्यसार–द्रव्य का सार। (११) महेच्छा (१२) प्रतिबध–गृद्धि। (१३) लोभात्मा–लोभ स्वरूप। (१४) महार्द्धि–अत्यत याचना। (१५) उपकरण (१६) सरक्षणा–शरीर आदि की रक्षा करना। (१७) भार (१८) सतापोत्पादक–अनर्थजनक। (१९) कलिकरड–कलह का पात्र। (२०) प्रविस्तार–धनादि का फैलाव। (२१) अनर्थ। (२२) सस्तव–परिचय जानपहचान। (२३) अगुप्ति–इच्छा को न दबाना। (२४) आयास–खेद कारक। (२५) अवियोग–धन आदि का त्याग न करना। (२६) अमुक्ति—सलोभता। (२७) तृष्णा—धनादि की आकाक्षा। (२८) अनर्थक—वास्तव मे निरर्थक (२९) आसक्ति (३०) असन्तोष। परिग्रह के यह तीस नाम हैं

परिग्रही—परिग्रह करने वाले ममता और लोभ मे ग्रस्त होते हैं। भवनपति आदि विमानवासी देव भी परिग्रह की रुचि वाले और विविध परिग्रह करने की बुद्धि वाले होते हैं। असुरकुमार, नागकुमार, सुवर्ण कुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, पवनकुमार, स्तनितकुमार, तथा आठ व्यन्तर आणपण्णी, पाणपण्णी, इसीवाई, भूतवादी, कदी, महाकदी, कुहड, पतग, तथा पिशाच, भूत यक्ष, राक्षस किन्नर, किपुरुष, महोरग, गन्धर्व, तथा तिर्यक् लोक में

रहने वाले पाँच ज्योतिषी देव, बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, शनि, राहु, धूमकेतु, बुध, मङ्गल, तपाये सोने के समान रक्त वर्ण वाले ज्योतिष चक्र में भ्रमण करने वाले ग्रह, भ्रमण करने में रुचि रखने वाले केतु-ग्रह अट्ठाईस प्रकार के नक्षत्र, देवों का समूह, अनेक आकार वाले तारे, अव-स्थित--निश्चल दीप्ति वाले तारे, जो मनुष्य क्षेत्र के बाहर हैं। मनुष्य क्षेत्र मे घूमने वाले तारे, सतत वृत्ताकार घूमने वाले, तिर्यक् लोक के ऊपर घूमने वाले तारे, ऊर्ध्व लोक म रहने वाले दो प्रकार के (कल्पोत्पन्न और कल्पातीत) वैमानिक देव सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत प्राणत, आरण और अच्युत--ये कल्प विमानों मे रहने वाले, ग्रैवेयक, और अनुत्तर विमान वाले कल्पा-तीत देव, यह सब महान् ऋद्धि वाले हैं, देवों मे उत्तम हैं। ये चारों प्रकार के देवता परिवार युक्त हैं। यह भी ममता रखने वाले हैं।

भवन, वाहन, यान, विमान, शयन, आसन, वसन, आभूषण श्रेष्ठ-शस्त्र, नाना प्रकार के मणि-रत्नों का सचय विविध पात्र, स्वेच्छा से नाना प्रकार के रूप की विक्रिया करने वाली अप्सराओं के समूह, द्वीप, समुद्र, दिशाएँ, विदिशाएँ, चैत्य, वनखड, पर्वत, ग्राम, नगर आराम, उद्यान, कानन, कूप, सरोवर, तालाब, बावडी, दीर्घिका, (बड़ी बावड़ी) देवालय, सभा, प्याऊ, तापसों के आश्रम, आदि अनेक पदार्थों का परि-ग्रह रखने वाले, विपुल द्रव्य का ममत्व रखने वाले देव-देवियां और इन्द्र भी सतुष्ट नहीं हो पाते।

उनकी बुद्धि तीव्र लोभ से आक्रान्त है। हिमवन पर्वत, इषुकार-पर्वत, वृत्त पर्वत, कुण्डल पर्वत, रुचक पर्वत, मानुषोत्तर पर्वत, कालोदधि समुद्र, लवण समुद्र, गगा आदि नदियाँ, पद्म आदि ह्रद, रतिकर पर्वत, अजनक पर्वत, दधिमुख पर्वत उत्पात पर्वत, (जिस पर देवता मनुष्य लोक मे आते समय विश्राम लेते हैं।), काञ्चन गिरि, विचित्र पर्वत, जमक पर्वत, शिखरी पर्वत, इत्यादि मे बसने वाले देवता परिग्रह के

धारी होने पर भी तृप्त नहीं होते हैं। इसी प्रकार वर्षधर पर्वत और अकर्मभूमि के देव भी सतुष्ट नहीं होते। इसके अतिरिक्त कर्मभूमि मे जितने भी देश हैं और उनमें मनुष्य, चक्रवर्ती वासुदेव, वलदेव, माडलिक राजा, युवराज, पट्टवन्ध, सेनापति, इभ्य (खड़े हुए हाथी को ढँक देने योग्य सम्पत्ति के स्वामी), सेठ, राष्ट्रिक, (देश की व्यवस्था करने वाला) पुरोहित, कुमार, दडनायक, माडम्बिक राजा, सार्थवाह,कौटुम्बिक, अमात्य, इत्यादि जो अनेक मनुष्य वसते हैं, वे सभी परिग्रह को धारण करते हैं।

यह परिग्रह परिमाण रहित है, शरण दाता नहीं है, दुःख पूर्ण अन्त वाला है, अध्रुव है, अनित्य है, क्षण भगुर है, पाप कर्म का कारण है, सत्पुरुषों द्वारा न करने योग्य है, विनाश का मूल है, अतिशय वध-बन्ध-और क्लेश का कारण है, अनन्त सक्लेश का हेतु है। धन-धान्य रत्न आदि का सग्रह करने पर भी लोभ का मारा मनुष्य ससार में भ्रमण करता है और ससार समस्त दुःखों का घर है।

परिग्रह का कारण—परिग्रह के लिए बहुतेरे लोग सैकड़ों शिल्प (चित्रादि) और सुन्दर लेखन से लगाकर गणित वगैरह शकुनिरुत (पक्षियों की बोली) पर्यन्त बहत्तर कलाएँ सीखते हैं। रति उत्पन्न करने वाली स्त्रियों की चौंसठ कलाओं का अभ्यास करते हैं। शिल्प कला, असि, मषि कृषि, व्यापार, व्यवहार, अर्थ-शास्त्र, धनुर्विद्या, छुरा चलाना आदि, विविध प्रकार के वशीकरण आदि मन्त्र तथा अन्यान्य सैकड़ों परिग्रह के कारणों को मन्द बुद्धि वाले जीव जिन्दगी भर करते रहते हैं। तथा परिग्रह के लिए प्राणियों का वध करते हैं, असत्य भाषण करते हैं, मायाचार करते हैं, अच्छी वस्तु में बुरी वस्तु मिलाकर वेचते हैं, पर द्रव्य के ग्रहण करने का लोभ करते हैं, स्व-पर की स्त्री का सेवन करके शरीर और मन को खिन्न बनाते हैं। वाचनिक कलह, शारीरिक झगड़ा, वैर, अपमान, और क्लेश पाते हैं। सामान्य एव बडी-बडी इच्छा रूप सैकडों

तृष्णाओं से तृषित, तृष्णा द्वारा लोभ ग्रस्त और आत्मा का निग्रह न करने वाले मनुष्य निन्दास्पद क्रोध, मान, माया, और लोभ का सेवन करते हैं। इसके अतिरिक्त परिग्रह से ही माया आदि शल्य, तीन दण्ड, तीन गर्व, चार कषाय, चार संज्ञा, पाँच काम गुण, पाँच आस्रव कर्म, पाँच इन्द्रिय-विकार, तीन अशुभ लेश्याएँ, स्वजनों के संयोग की ममता, सचित्ताचित्त-द्रव्य का मिश्रण, इत्यादि के आचरण करने की इच्छा का उदय होता है।

परिग्रह के फल—तीर्थंकर भगवान ने कहा है कि देव लोक मनुष्य लोक और असुर लोक, में लोभ से उत्पन्न होने वाले परिग्रह के समान और कोई पाश नहीं है, प्रतिबन्धन हीं है। समस्त लोक मे सब जीवों को परिग्रह लगा हुआ है। परिग्रह से चिपटे हुए जीव परलोक में नष्ट होते हैं और अज्ञान रूपी अन्धकार मे निमग्न रहते हैं। महा-मोहनीय मे मूर्छित हुए जीव लोभके वश होकर गहन अज्ञान अन्धकार रूप त्रस स्थावर सूक्ष्म-बादर-पर्याप्त-अपर्याप्त इन जीवनिकायों मे लम्बे समय तक परिभ्रमण करते हैं।

ऐसे परिग्रह का फल—विपाक इसलोक और परलोक में अल्प सुख और विपुल दुःख रूप है। वह महाभय का कारण है प्रगाढ कर्म-रज को उत्पन्न करता है। वह दारुण है, कठोर है, असाता कारक है और हजारों वर्ष पर्यन्त भी भोगे बिना छूट नहीं सकता।

इस प्रकार सिद्धार्थनन्दन, महात्मा, वीतराग महावीर स्वामी ने कहा है। यह परिग्रह नामक पाँचवाँ आस्रवद्वार है।

यह पाँच आस्रव कर्म रूप रज से जीव को मलिन करके प्रति—समय चार गति रूप संसार में घुमाते हैं।

जो पापी जीव संसार-भ्रमण के कारण उपस्थित करते हैं और धर्म नहीं सुनाते हैं या सुनकर प्रमाद करते हैं—

गुरूके द्वारा तरह-तरह से उपदेश पाने पर भी जो मिथ्यादृष्टि निकाचित कर्म वाले जीव धर्म श्रवण करते हैं पर उसका आचरण नहीं करते।

समस्त दुःखों का अन्त करने वाली, गुण युक्त मधुर जिन वचन रूपी औषधि को पीना नहीं चाहते तो क्या किया जा सकता है ?

(प्राणातिपात आदि) पाँच का परित्याग करके और (प्राणातिपात विरमण आदि) पाँच का भाव पूर्वक रक्षण करके, जीव कर्म-रज से मुक्त होते हैं और सर्व श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त करते हैं।
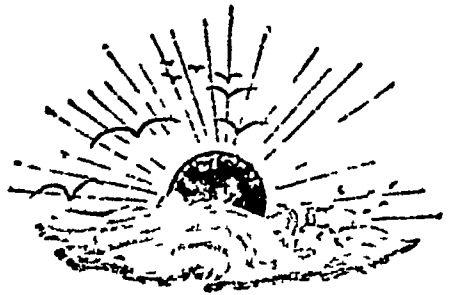
छठा अध्याय

प्रथम संवर द्वार—अहिंसा

श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं—हे जम्बू ! आस्रव द्वार का कथन करने के पश्चात्, पाँच संवर द्वारों को अनुक्रम से, भगवान् महावीर के कथनानुसार समस्त दु खों का नाश करने के हेतु कहता हूँ ।

पहला द्वार अहिंसा, दूसरा सत्य-वचन तीसरा दत्तादान चौथा ब्रह्मचर्य और पाँचवाँ अपरिग्रह हैं ।

सर्वप्रथम अहिंसा त्रस स्थावर समस्त जीवों से कल्याण करने वाली है । उसके कुछ गुण भावनाओं सहित कहता हूँ ।

हे सुव्रत ! यह महाव्रत सर्व प्रकार से लोक-हित करने वाले हैं सिद्धान्त रूपी सागर में उनका उपदेश दिया गया है तप और संयम का इनसे क्षय नहीं होता अथवा तप संयम रूप व्रत हैं, शील एवं अन्य उत्तम गुणों के समूह वाले हैं सत्य और आर्जव के कारण प्रधान व्रत हैं, नरक-तिर्यञ्च मनुष्य और देव गति का निवारण करने वाले हैं, समस्त तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित हैं, कर्म रज को दूर करने वाले हैं, सैकड़ों भवों का विनाश करने वाले हैं, सैकड़ों दु.खों से छुडाने वाले हैं, सुखों के उत्पादक हैं । कायर पुरुष बडी कठिनाई से इनका पालन कर सकते हैं ।

सत्पुरुषों ने इनका आचरण किया है। ऐसे यह पाँच संवर द्वार भगवान ने कहे हैं।

इनमें प्रथम जो अहिंसा है सो देव, मनुष्य और असुर सहित समस्त जगत् के लिए पथप्रदर्शक दीपक है, या संसार-सागर में डूबते हुए प्राणी को सहारा देने के लिए द्वीप है, त्राण है शरण है गति है, प्रतिष्ठा है। उस अहिंसा के साठ नाम इस प्रकार हैं—

(१) निर्वाण (२) निर्वृत्ति (३) समाधि (४) शान्ति (५) कीर्ति (६) कान्ति (७) रति (८) विरति (वैराग्य) (९) श्रुताङ्ग (१०) तृप्ति (११) दया (१२) विमुक्ति (मोक्ष) (१३) क्षान्ति (१४) सम्यक्त्वाराधना (१५) महती (१६) बोधि (१७) बुद्धि (१८) धृति (१९) समृद्धि (२०) ऋद्धि (२१) वृद्धि (२२) स्थिति (२३) पुष्टि (२४) नन्दा (२५) भद्रा (२६) विशुद्धि (२७) लब्धि (२८) विशिष्टदृष्टि (२९) कल्याण (३०) मङ्गल (३१) प्रमोद (३२) विभूति (३३) रक्षा (३४) सिद्धावास (३५) अनास्रव (३६) केवलि स्थान (३७) शिव (३८) समिति (३९) शील (४०) संयम (४१) शीलपरिग्रह (४२) संवर (४३) गुप्ति (४४) व्यवसाय (४५) उत्सव (४६) यज्ञ (भाव यज्ञ) (४७) आयतन (४८) यतन (४९) अप्रमाद (५०) आश्वासन (५१) विश्वास (५२) अभय (५३) सर्व-अमाघात (किसी को न मारना)(५४) चोक्ष (स्वच्छ)(५५) पवित्र (५६) शुचि (५७) पूजा (भावपूजा) (५८) विमल (५९) प्रभास (६०) निर्मलतर, इत्यादि सार्थक पार्यायवाची नाम अहिंसा भगवती के होते हैं।

यह भगवती अहिंसा प्राणियों को, भयभीतों के लिए शरण के समान है, पक्षियों को आकाशगमन के समान हितकारिणी है, प्यासों को पानी के समान है, भूखों को भोजन के समान है, समुद्र में जहाज के समान है, चौपायों के लिए आश्रम (आश्रय) के समान है, रोगियों के लिए औषधि के समान है, और अटवी के बीच निश्चिन्त होकर चलने में सार्थवाह के समान सहायक है।

इतना ही नहीं, भगवती अहिंसा इससे भी अधिक विशिष्ट कल्याण-कारिणी है। यह पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, बीज, हरित, जलचर, स्थलचर, नभचर, त्रस, स्थावर, समस्त प्राणियों का कल्याण करने वाली है।

अनन्त ज्ञान-दर्शन के धारी, शील-गुण-विनय-तप और सयम के नायक, तीर्थ की प्रवृत्ति करने वाले, जगत् के प्राणीमात्र पर वात्सल्य रखने वाले, तीन लोक के पूजनीय, जिन चन्द्रों (जिनेद्र भगवान) ने अहिंसा का भलीभाँति निश्चय किया है। विशिष्ट अवधिज्ञान के धारियों ने इसे जाना है, ऋजुमति ज्ञानधारियों ने इसे देखा है विपुल मति-ज्ञानियों ने इसे भलीभाँति जाना है पूर्वधरों ने इसका अध्ययन किया है, विक्रिया करने वालों ने आजन्म इसका पालन किया है, मति-ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, मन· पर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी, स्पर्शमात्र मे रोग निवारण करने की (आमर्शौषधि) ऋद्धि के धारी, खेलौषधि (थूक से रोगनाशक) ऋद्धि के धारी जल्लौषधि (शरीर के मैल से व्याधिहारी) ऋद्धि धारी, विप्रुषौषधि (मल-मूत्ररूप औषधि) ऋद्धि के धारक, तथा पूर्वोक्त समस्त पदार्थों की ऋद्धि रूप धारण करने वाले (सर्वौषधि रूप) थोड़े मे बहुत समझने वाली बीज रूप बुद्धि के धनी, कोष्ठ सरीखी (एक बार जानकर फिर न भूलना) बुद्धि वाले, पदानुसारी (एक पद से अनेक पद समझने वाली) बुद्धि के स्वामी, शरीर के सब अवयवों मे सुनने वाले, श्रुतधारी स्थिर मन वाले, वचन-बली (दृढ प्रतिज्ञ), काय बलवाले, ज्ञान-बल के धारक, दर्शन बल के स्वामी, चरित्र-बली, दूध के समान मधुर वचन बोलने (की लब्धि) वाले, मधु और घृत के समान मधुर वचन बोलने वाले, अक्षीण भोजन (अपने लिए लाये भोजन से लाखों को जिमावे फिर भी भोजन समाप्त न हो ऐसी) लब्धि वाले, जघाचरण लब्धि वाले, विद्याधर, एकान्तर उपवास करने वाले,

इसी प्रकार दो-तीन चार पाँच यावत् छह मास उपवास कर-कर पारणा करने वाले उत्क्षिप्त चरक (पकाने के वर्त्तन में से निकाला हुआ भोजन लेने वाले) निक्षिप्त चरक (पकाने के बर्त्तन मे रखा हुआ भोजन ग्रहण करने वाले), अन्त-चना वगैरह और प्रांत—भोजन के अन्त मे बचा हुआ आहार लेने वाले रूखा आहार लेने वाले, अल्पाहार लेने वाले भिक्षाजीवी बासी अन्न लेने वाले, मौन रखने वाले, भिड़े हुए (ससृष्ट) हाथ या पात्र से ही भिक्षा लेने वाले, जिस वस्तु को भिक्षा मे देना हो उसी प्रकार की वस्तु से ससृष्ट हाथ और पात्र से भिक्षा लेने वाले, समीप ही भिक्षा लेने वाले (समीप न मिले तो दूर न जाने वाले), शुद्ध-निर्दोष भिक्षा लेने वाले दत्ति की संख्या का निश्चय करके आहार लेने वाले, दिखाई देने वाले स्थान से लाया हुआ आहार लेने वाले, न दिखाई देने वाले स्थान से आहार लेने वाले, पूछने वाले से ही आहार लेने वाले, सदा आयंबिल करने वाले, सदा परिमड्ढ तप करने वाले, सदा एकाशना करने वाले, निवि (विशिष्ट तपस्या के पश्चात विगय रहित तप) करने वाले, तोड़े-फोड़े हुए पिंड को पात्र मे डालने से आहार लेने वाले परिमित आहार लेने वाले अन्त, प्रान्त, अरस, विरस, आहार लेने वाले, रूक्ष आहार लेने वाले, तुच्छ (अल्प) आहार लेने वाले, अन्त-प्रान्त रूक्ष-तुच्छ आहार लेकर जीवन निर्वाह करने वाले, (आन्तरिक वृत्ति से) उपशान्त जीविका चलाने वाले, (बाह्य रूप से) प्रशान्त जीविका चलाने वाले, निर्दोष आजीविका से निर्वाह करने वाले, दूध, मधु और घृत न लेने वाले, मद्य मास के त्यागी, अभिग्रह करके अमुक स्थान को ग्रहण करने वाले, भिक्षु की बारह पडिमा धारण करने वाले, उकडू (उत्कटुक) आसन से बैठने वाले, वीरासन से बैठने वाले, पल्यंकासान से बैठने वाले, दण्डासन से बैठने वाले, लगण्ड (टेढा काष्ठ) आसन से बैठने वाले, एक पसवाडा ही जमीन से लगाने वाले, आतापना लेने वाले, मुख से कहीं इधर उधर न थूकने वाले,

शीत काल मे शीत परिषह सहने के लिए चादर वगैरह न ओढने वाले, कभी शरीर को न खुजाने वाले, केश-मूंछ-रोम और नखों को शोभा-वृद्धि के लिए न रखने वाले, और शरीर के सब प्रकार के सस्कार से रहित सुत्र अर्थ के धारक इन सभी मुनियों ने भगवती अहिंसा का सम्यक् प्रकार से पालन किया है।

धीरमति और धीर बुद्धि वाले, आशीविष सर्प के उग्र तेज के समान तेज वाले, पूर्ण निश्चय और पुरुषार्थ-व्यवहार का विधान करने की बुद्धि वाले, नित्य स्वाध्याय-ध्यान करने वाले, सदा धर्म ध्यान करने वाले, पाँच महाव्रत के धारी, समितियो मे प्रवृत्ति करने वाले, पाप का क्षय करने वाले, षट्काय रूपी जगत् के प्रतिवात्सल्य भाव रखने वाले, सतत् अप्रमादी इन सब ने और अन्य महापुरुषो ने भी भगवती अहिंसा का पालन किया है।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस तथा स्थावर जीवों की दया पालने के लिए निर्दोष आहार की गवेषणा करनी चाहिये। (साधु के निमित्त) न बना हो, न बनवाया हो, बिना निमन्त्रण के प्राप्त, अनु-दिष्ट, साधु के अर्थ खरीदा न गया हो, नव कोटि विशुद्ध, (शकादि) दस दोषो से रहित, (सोलह) उद्गम और (सोलह) उत्पादना दोषों से रहित, ऐषणीय-शुद्ध, देय वस्तु मे पृथ्वी आदि के जीव स्वय ही दूर हो, या वस्तु अचित्त हो गई हो, अथवा दाता के द्वारा जीव पृथक् कर दिये गये हों या स्वय पृथक् हो गये हों, ऐसा प्रासुक हो, इस प्रकार का भोजन गवेषणा करने योग्य है। जो आहार (भिक्षार्थ जाने पर) आसन पर बैठ कर धर्मकथा कहने से प्राप्त न हुआ हो, चिकित्सा, मन्त्र, जड़ी और औषध रूप कार्य करने से न प्राप्त हुआ हो, लक्षण (सामुद्रिक सम्बन्धी) उत्पात, स्वप्न, ज्योतिष निमित्त सबधी कथन एव विस्मयोत्पादक बात कहे बिना मिला हो, मायाचार सेवन किये बिना ही मिला हो, जो किसी के निमित्त रखा हुआ न हो, कला आदि सिखाये बिना ही मिला हो, माया-सेवन

विना—रख न छोडा हुआ—कलादि सिखाये विना मिला हो, वही आहार गवेपणीय है।

किसी की वन्दना से, मान-सम्मान से, पूजा से, वदन, मान, पूजन से भिक्षा की गवेपणा करना उचित नहीं है।

किसी का अपमान करके, निन्दा करके, तिरस्कार करके, अपमान-निदा—तिरस्कार करके, भिक्षा की गवेपणा नहीं करना चाहिए।

किसी को भय बताकर, तर्जना करके, ताड़ना करके, भय तर्जना-ताड़ना करके, भिक्षा की गवेपणा नही करना चाहिए।

गर्व करके, दरिद्रता प्रदर्शित करके, रङ्क की तरह याचना करके, गर्व-दैन्य-रङ्कता प्रगट करके, भिक्षा की गवेपणा नहीं करनी चाहिए।

मित्रता बताकर, प्रार्थना करके, सेवा करके, मित्रता-प्रार्थना—सेवा करके भिक्षा की गवेपणा नहीं करनी चाहिए।

अपने आपको प्रगट किये विना, रुद्ध हुये विना, द्वेष-रहित, दीनता-रहित, अनमना हुए विना, दयनीय हुए विना, विपाद रहित, सयम मे उद्यमशील रहते हुए, यतना से, सयम-शीलता से, विनय-क्षमा गुण युक्त होकर, भिक्षु भिक्षा की गवेपणा मे उद्यम करे।

समस्त ससार के जीवों की रक्षा के लिए और दया के लिए भगवान् ने प्रवचन का उपदेश दिया है। यह प्रवचन आत्मा का हित करने वाला है, जन्मान्तर मे शुद्ध फल दाता है, भविष्य मे कल्याणकारी है, निर्दोष हैं, न्याय युक्त है, मुक्ति के लिए सरल है, सर्वश्रेष्ठ है, समस्त दुखों और पापों को शान्त करने वाला है।

पाँच भावनायें—प्राणातिपात विरमणव्रत की रक्षा के लिए पहले व्रत की यह पाँच भावनाये हैं —

पहली भावना—स्थिति में और गमन मे स्व-पर को बाधा न हो इस प्रकार गुण युक्त, जूवा (यूप) प्रमाण पृथ्वी को देखते हुए चलना चाहिये। जो कीट-पतङ्ग, त्रस-स्थावर की दया पालने मे तत्पर है उसे

एव नित्य ही फूल-फल-छाल-प्रवाल-कन्दमूल-मृत्तिका—बीज – हरित के त्यागीको, सम्यक् प्रकार से (यतना से) चलना चाहिए। इस प्रकार समस्त प्राणियों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए, निन्दा नहीं करनी चाहिए, गर्हा (तिरस्कार) नही करनी चाहिए, हिंसा नहीं करनी चाहिए, उनका छेदन नहीं करना चाहिए, भेदन नही करना चाहिए, वध नहीं करना चाहिए, तनिक भी भय और दु ख नहीं पहुँचाना चाहिए। इस प्रकार जो ईर्यासमिति के योग से युक्त होता है, अन्तरात्मा, मलिनता रहित-विशुद्ध परिणाम वाले तथा अखण्डित चारित्र की भावना से युक्त होता है-एव अहिंसक, सयमी और सुसाधु होता है।

दूसरी भावना—मन मे भी पाप चिन्तन नहीं करना चाहिए। यह पाप अधार्मिक है, दारुण, है नृशंस है, बहुत से वध-बध-क्लेश का उत्पादक है, भय-मरण-क्लेश से युक्त होने के कारण अशुभ है अतएव पाप रूप मन मे कदापि पाप—विचार नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार मन-समिति-योग की भावना मे जो युक्त है उसका अन्तरात्मा पाप के मैल से रहित-विशुद्ध परिणाम वाले अखण्डित-चरित्र की भावना से युक्त, अहिंसक, सयमी और सुसाधु होता है।

तीसरी भावना —पाप-वचनों मे कुछ भी पाप अधम रूप भाषण नहीं करना चाहिए। यह पाप अधार्मिक है, दारुण है नृशस है, विविध वध-बध परिक्लेशों का जनक है जरा-मरण-क्लेशो के कारण अशुभ है, अत· पाप युक्त वचन कदापि नहीं बोलना चाहिए।

इस प्रकार जो वचन समिति-योग से युक्त है वह अन्तरात्मा पाप-मल से रहित, विशुद्ध परिणाम युक्त और अखण्डित चारित्र वाली भावना से युक्त अहिंसक, सयमवान्, और सुसाधु होता है।

चौथी भावना—आहार-एषणा मे शुद्ध भोजन की गवेषणा करनी चाहिए। (दाता को) परिचय दिये बिना, गृद्ध हुए बिना, द्वेष- रहित, दीनता लाये बिना, दयनीय हुए बिना, विषाद रहित होकर, अनमना न

होकर, सयम मे उद्योग शील मनोयोग पूर्वक, यतना पूर्वक, सयम योग पूर्वक, विनय क्षमा आदि गुणों से युक्त होकर भिक्षा की गवेषणा करनी चाहिए।

इस प्रकार भिक्षाचर्या के लिये भ्रमण कर के थोडा-थोडा लेकर स्वस्थान आकर गमनागमन में लगे हुए दोषों का गुरु के समीप प्रतिक्रमण कर के, दोष से निवृत्त हो। जिस प्रकार भोजन के पदार्थ लिये हों वह गुरु से कहे। उन्हें दिखलावे और गुरु का उपदेश सुनकर निरतिचार होकर अप्रमत्त बने। तथा साधु को अनेषणा के जो दोष अनजान में लगे हों और जिनकी आलोचना न की हो उनका प्रतिक्रमण करे। फिर शान्त चित्त से सुखासन से बैठे, ध्यान-शुभयोग-ज्ञान-स्वाध्याय से मुहूर्त पर्यन्त मन को सयत-गोपित करे। धर्म म मनवाला, अशून्य चित्त वाला, शुभ मन वाला, कलह हीन मन वाला, समाधियुक्त मन वाला, श्रद्धा—सवेग—निर्जरा मे चित्त को स्थापित करने वाला, प्रवचन मे प्रमभाव रखने वाला साधु उठ कर, प्रसन्न होकर, अपने से बड़े साधुओं को क्रमश निमन्त्रित करके सब साधुओं को आहार लेने का आग्रह करे। फिर गुरुजनों की आज्ञा के अनुसार आसन पर बैठे और मस्तक सहित समस्त शरीर का तथा हथेलियों का प्रमार्जन करे, फिर अमूर्छित गृद्धि रहित, रसानुराग रहित, आहार की निन्दा न करके, रस मे एकाग्रता किये बिना, निर्मल चित्त से, लुब्ध हुए बिना, स्वार्थ-भाव बिना, सड-सड़ या चप-चप आवाज न करते हुए, अनुत्सुक भाव से, बहुत समय न लगाते हुए, एक बूँद भी पृथ्वी पर न गिराते हुए, प्रकाश वाले (चौडे मुँह के) पात्र में, यतना पूर्वक, प्रयत्न पूर्वक, सयोजना-दोष रहित, राग रहित, द्वेष रहित, गाडी को ओंगन देने के समान, फोड़े पर औषधि लगाने के समान, सयम यात्रा का निर्वाह करने के लिये, सयम का भार वहन करने के लिये साधु आहार करे।

इस प्रकार आहार-समिति के योग से जो भावित है उसका अन्तरात्मा निर्मल, असक्लिष्ट परिणाम वाला, अखड चारित्र की भावना से

भावित और सयम वान सुसाधु होता है।

पाँचवीं भावना—आदान निक्षेपण समिति है। पीठ, फलक शय्या सस्तारक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, दड, रजोहरण, चोलपट्ट, मुखवस्त्रिका, पाद-पोंछन, ये सयम-वृद्धि के उपकरण हैं। वायु, आतप डास, मच्छर, और शीत से रक्षण करने के लिए हैं। इन उपकरणों का राग-द्वेष रहित होकर उपभोग करना चाहिए। साधु का सदा (प्रतिदिन) इन पात्र वस्त्र आदि उपकरणों का प्रतिलेखन करना चाहिये, फैलाकर देख लेना चाहिये और उन्हे पूजना चाहिये और रात म तथा दिन मे निर-न्तर प्रमाद रहित होकर रखना-उठना चाहिये।

इस प्रकार जो आदान-भाण्डनिक्षेपणा समिति के योग से युक्त है उसका अन्तरात्मा निर्मल, असक्लिष्ट परिणाम वाला, अखड चारित्र की भावना मे भावित, अहिंसक, सयमवान और सुसाधक बनता है।

इस प्रकार सवर द्वार का सम्यक् रूप से पालन करने पर आत्मा सुरक्षित होता है। धीर और मतिमान को इन पाँच भावनाओं म मन वचन, काय से, सदैव मरण पर्यन्त इस योग का निर्वाह करना चाहिये। यह योग अनास्रव रूप है, निर्मल है, छिद्र-नवीन कर्म रूपी जल के आगमन के द्वार--से रहित है. अपरिस्रावी—कर्म-जल के प्रवेश से न बहने वाला है, चित्त के सक्लेश से रहित है, निर्दोष है, समस्त तीर्थ-ङ्करों द्वारा सम्मत है।

इस प्रकार साधुजनों ने पहले सवर द्वार की स्पर्शना की, पालना की, अतिचार टालकर शुद्धि की उसे पूर्ण किया, दूसरों को उपदेश दिया, आराधना की, और जिन भगवान् की आज्ञा से पालन किया है।

इस प्रकार भगवान् ज्ञात मुनि ने (श्रमण भ० महावीर ने) उप-देश दिया है, भेद-प्रभेद बताकर प्ररूपणा की है, प्रसिद्ध किया है, प्रमाण-प्रतिष्ठित किया है, पूजनीय कहा है, सम्यक् प्रकार से इसका उप-देश दिया है। यह मागलिक है।

सातवाँ अध्याय

द्वितीय संवर द्वार—सत्य वचन

श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं—हे जम्बू! दूसरा संवर द्वार सत्य वचन है।

सत्य की महिमा—सत्य वचन निर्दोष है, पवित्र है, शिव है, सुजात है सुभाषित है, सुव्रत रूप है, सुकथित है, सुदृष्ट है, सुप्रतिष्ठित है, सुप्रतिष्ठित यश वाला है, अत्यंत संयत वचनों द्वारा कथित है, उत्तम देवों—उत्तम पुरुषों—बलवानों तथा सुविहित जनों द्वारा सम्मत है, परम साधुओं का धर्मानुष्ठान है, तप और नियमों द्वारा गृहीत है, सद्गति का मार्ग बतलाने वाला है, और यह व्रत लोक मे उत्तम है।

यह विद्याधरों की आकाश गामिनी विद्या की सिद्धि मे साधन रूप है, स्वर्ग का मार्ग और मोक्ष का मार्ग बतलाने वाला है, असत्य से रहित है।

यह सत्य सरल है, अकुटिल है, वास्तविक अर्थ का प्रतिपादक है, प्रयोजन से विशुद्ध है, उद्योत करने वाला है, जीव लोक मे समस्त भावों को प्रकाशित करता है, अविसंवादी है, यथार्थ में मधुर है, प्रत्यक्ष देवता के समान, आश्चर्य-जनक कार्यों का साधक है। अनेक अवस्थाओं में मनुष्य महासमुद्र के मध्य में रहा हुआ भी सत्य के प्रभाव से डूबता नहीं

है । समुद्र मे भूले हुए जहाज और उनके चलाने वाले पानी के भँवरों मे भी सत्य के प्रताप से डूबते नहीं है, मरते नहीं हैं, और किनारे लग जाते हैं। सत्य के प्रभाव से मनुष्य अग्नि का क्षोभ होने पर भी जलता नहीं है। सरल सत्यवादी पुरुष तपे तेल, रांगा, लोहा या शीशे का स्पर्श करे या हथेली पर रखे तो भी नहीं जलता है। सत्यवादी पुरुष पर्वत मे पटक देने पर भी नहीं मरते हैं। सत्यवादी, समर मे शत्रुओं की तलवार के सपाटे मे आकर भी बिना घाव लगे निकल आता है। मारपीट-वधन-घोर शत्रुता मे फँसकर भी और शत्रुओं के बीच आया हुआ भी सत्यवादी पुरुष अबाधित निकल आता है। सत्य मे रति रखने वाले सत्यवादी की देवगण भी सहायता करते हैं। अत सत्य भगवान् है। तीर्थंकरों ने इसका भली भाँति उपदेश किया है। वह इस प्रकार है।

चतुर्दश पूर्वधारियों ने सत्य के पूर्वों में प्रतिपादित अंश को जाना है महर्षियो को सिद्धान्त रूप से प्रदान किया है देवेन्द्रों और नरेन्द्रों को सत्य का प्रयोजन बतलाया है, वैमानिक देवों ने सत्य का महा प्रयोजन साधा है, सत्य मन्त्र, औषधि तथा विद्याओं की साधना कराने वाला है, विद्याधरों—चारणों एव श्रमणों की विद्याएँ सत्य से ही सिद्ध होती हैं। सत्य मनुष्यों के लिए वन्दनीय है, देवों के लिए पूजनीय है और असुरों के लिये अर्चनीय है। अनेक पाखण्डियों ने भी सत्य को ग्रहण किया है। सत्य लोक मे सारभूत है, महासागर से अधिक गम्भीर है, सुमेरु से अधिक स्थिर है, चन्द्र मण्डल से अधिक सौम्य है, सूर्यमण्डल से अधिक दीप्तिमान है, शरद ऋतु के आकाश से अधिक निर्मल है, गधमादन पर्वत से अधिक सुगन्धमय है।

लोक मे जितने भी मत्र-योग-जाप-विद्या जृम्भक-अस्त्र-शस्त्र शिक्षा-कला और आगम हैं, ये सब सत्य मे प्रतिष्ठित हैं।

न बोलने योग्य सत्य—सत्य भी, यदि सयम का बाधक हो तो उसे जरा भी नहीं बोलना चाहिये। हिंसा और सावद्य से युक्त, चारित्र को

भंग करने वाला विकथा रूप, वृथा, कलहकारी, अनार्य या अन्याय युक्त, अपवाद और विवाद उत्पन्न करने वाला, विडम्बना जनक, जोश और धृष्टता से युक्त, लज्जाहीन लोकनिन्दनीय, अच्छी तरह न देखा हुआ अच्छी तरह न सुना हुआ, अच्छी तरह न जाना हुआ, आत्म प्रशंसा तथा परनिन्दा रूप, ऐसा सत्य वचन भी नहीं बोलना चाहिए।

"तुझ में बुद्धि नहीं है, तू धन का लेनदार नहीं है, तू धर्म प्रिय नहीं है, तू कुलीन नहीं है, तू दानी नहीं है, तू शूरवीर नहीं है, तू रूपवान् नहीं है, तू सौभाग्यशाली नहीं है, तू पण्डित नहीं है, तू बहुश्रुत नहीं है, तू तपस्वी नहीं है, तू परलोक की निश्चित श्रद्धा नहीं रखता है", ऐसे वचन बोलने योग्य नहीं है। जो वचन जाति, कुल, रूप व्याधि, रोग आदि के कथन द्वारा पर को पीड़ा पहुँचाने वाले हों तथा उपचार अथवा उपकार का उल्लङ्घन करें वे वर्जनीय हैं। ऐसा सत्य भी बोलने योग्य नहीं है।

बोलने योग्य सत्य—तो किस प्रकार के वचन बोलने चाहिएँ? जो वचन द्रव्य, पर्याय गुण, कर्म, नाना प्रकार के शिल्प और आगम से युक्त हों, तथा नाम-आख्यात-निपात-उपसर्ग-तद्धित-समास-सन्धि-पद हेतु-यौगिक-उणादि (प्रत्यय विशेष)-क्रियाविधान-धातु-स्वर-विभक्ति-वर्ण से युक्त हो, अर्थात्—जो वचन अर्थ की दृष्टि से और शब्द शास्त्र की दृष्टि से युक्त हों उनका प्रयोग करना चाहिये। दस प्रकार का सत्यत्रैकालिक है। यह सत्य जिस प्रकार बोला गया हो उसी प्रकार कार्य करके दिखाना चाहिये भाषा बारह प्रकार की होती है और वचन सोलह प्रकार का है।

इस प्रकार अर्हन्त भगवान् द्वारा अनुज्ञात तथा समीक्षित वचन यथावसर संयमी जनों को बोलना चाहिए।

यह प्रवचन भगवान ने असत्य, चुगली तथा कठोर कटुक और विचार-हीन वचनों का निवारण करने के लिए सम्यक् प्रकार से कहा है। यह प्रवचन आत्महितकारी है, पर भव में शुभ फल देने वाला है, भविष्य में

कल्याणकारी है, शुद्ध है न्याययुक्त है, कुटिलता से रहित है, सर्वोत्तम है, समस्त दु.खों और पापों को शान्त करने वाला है।

पांच भावनाएं—पहली भावना—सत्य वचनरूप संवर के अर्थ को गुरु के समीप सुनकर, उसका मर्म भली भाँति समझ कर उतावला, त्वरित, चपल, अनिष्ट, कठोर, साहसिक, परपीडाकारी और सावद्य वचन नहीं बोलना चाहिए। सत्य हितकारी, परिमित, ग्राहक (प्रतीति जनक) शुद्ध, सुसगत, स्पष्ट, विचारयुक्त वचन सयमी जनों को अवसर के अनुसार बोलना चाहिए। इस प्रकार अनुविचिन्त्य समिति से जो भावित होता है उसका अन्तरात्मा हाथ-पैर-नेत्र मुख को सयत करने वाला, शौर्य और सत्यार्जव से परिपूर्ण हो जाता है।

दूसरी भावना—क्रोध का सेवन नहीं करना चाहिए। क्रुद्ध और रुद्र मनुष्य असत्य भाषण करता है, चुगली करता है, कठोर वचन बोलता है, असत्य-पैशुन्य-कठोर-वचनों का प्रयोग करता है, कलह करता है, वैर करता है, विकथा करता है, कलह, वैर, विकथा करता है, सत्य का घात करता है, शील का घात करता है, विनय का घात करता है, सत्य-शील-विनय तीनों का घात करता है, द्वेष का पात्र बनता है, दोष का पात्र बनता है, निन्दा का पात्र बनता है, द्वेष-दोष-निन्दा का पात्र बनता है। जो क्रोध की अग्नि से युक्त है, वह इस प्रकार के तथा अन्य प्रकार के मृषा-वचन बोलता है। अतएव क्रोध का सेवन नहीं करना चाहिए। इस प्रकार जिसका अन्तरात्मा क्षमा से भावित होता है वह हाथ-पैर-नेत्र-मुख को सयत करने वाला साधु शूरता और सत्यार्जव से युक्त होता है।

तीसरी भावना—लोभ का सेवन नहीं करना चाहिए। लोभी लालची मनुष्य क्षेत्र और वस्तु (मकान) के लिए झूठ बोलता है, लोभी कीर्ति और लाभ के लिए झूठ बोलता है, लोभी ऋद्धि और सुख के लिए झूठ बोलता है, लोभी भोजन और पान के लिए झूठ बोलता है, लोभी पीठ-फलक के लिए झूठ बोलता है, लोभी शय्या और सस्तारक के लिए झूठ

बोलता है, लोभी वस्त्र और पात्र के लिए झूठ बोलता है, लोभी कम्बल और पादप्रोंछन के लिए झूठ बोलता है, लोभी चेला-चेली के लिए झूठ बोलता है, लोभी इन तथा इनके अतिरिक्त और सैकडों कारणों से झूठ बोलता है, अतएव लोभ का सेवन नहीं करना चाहिए। इस प्रकार मुक्ति (निर्लोभता) मे भावित अन्तरात्मा हाथ-पैर-नेत्र-मुख को सयत करने वाला साधु शूरता और सत्यार्जव से युक्त होता है।

चौथी भावना—भयभीत नही होना चाहिए। भयभीत को शीघ्र ही अनेक भय उपस्थित हो जाते हैं। भीत (डरे हुए) की कोई सहायता नहीं करता। भीत को भूत-प्रेत लग जाते हैं। भीत मनुष्य दूसरों को भी भयभीत बनाता है। भीत मनुष्य तप और सयम को भी त्याग बैठता है। भीत मनुष्य सयम के भार को तथा सत्पुरुषो द्वारा सेवित मार्ग को नहीं निभा सकता। अतएव भय से, व्याधि से, रोग से, जरा से, मृत्यु से, तथा अन्य किसी भी भय के हेतु से भयभीत नहीं होना चाहिए।

इस प्रकार धैर्य से भावित अन्तरात्मा हाथ-पैर नेत्र मुख को सयत करता हुआ, साधु शूरता और सत्यार्जव से युक्त होता है।

पाँचवीं भावना—हास्य का सेवन नहीं करना चाहिए। हँसोड़ लोग असत्य और अशोभन वचन बोलते हैं। हास्य अपमान का कारण है, पर-निन्दा और पर-पीडा का जनक है। हास्य से चारित्र का भग होता है और चेहरे में विकृति आ जाती है। हास्य आपस मे किया जाता है अत. अन्योन्य की कुचेष्टाओं का तथा मर्म का कारण होता है लोक-निन्दनीय कर्मों का कारण होता है। हास्य कन्दर्प और अभियोग्य जाति के देवताओं मे (साधु को) उत्पन्न करता है। हास्य असुरता और किल्वि-षता को उत्पन्न करता है अर्थात् हँसोड़ साधु असुरकुमार देव होता है या चाडाल के समान किल्विष देव होता है। अत हँसी नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार मौन से भावित अन्तरात्मा हाथ-पैर-नेत्र मुख को सयत

करने वाला, साधु, शूरता और सत्यार्जव से युक्त होता है।

इस प्रकार संवर द्वार का सम्यक् रूप से पालन करने पर आत्मा सुरक्षित होता है।

धीर और बुद्धिमान् को चाहिये कि वह मन वचन और काय को सुरक्षित रखने वाले इन पाँच कारणों से यावज्जीवन इस सत्य वचन रूप योग का निर्वाह करे। यह योग अनास्रव रूप है, छिद्र—नवीन कर्मों के आगमन के द्वार—से रहित है, कर्म जल का प्रवेश न होने के कारण अपरिस्रावी (न बहने वाला) है, संक्लेश से रहित है, समस्त तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट है।

इस प्रकार यह दूसरा संवर द्वार साधु जनों द्वारा स्पर्शना किया हुआ है, पालन किया गया है, अतिचार टालकर शोधित किया गया है, पूर्ण किया गया है, अनुपालन किया गया है और जिनेन्द्र की आज्ञा से आराधन किया गया है। ऐसा भगवान् ज्ञात मुनि ने उपदेश दिया है, प्ररूपणा की है, प्रसिद्ध किया है। यह सिद्ध-शासन पूजनीय, सदुपदेशित और प्रशस्त है।

आठवाँ अध्याय

तृतीय संवर द्वार—दत्तादान

श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं—हे जम्बू! दत्त (अन्नादि) और अनुज्ञात (पीठ फलक आदि) वस्तुओं को ग्रहण करना तृतीय संवर द्वार है।

हे सुव्रत! यह महाव्रत है और गुणव्रत अर्थात् इह-परलोक में उपकार करने वाले गुणों का कारण है। यह व्रत पर द्रव्य के हरण में विरक्ति युक्त है और अपरिमित तथा अनन्त तृष्णा के कारण भूत एवं सदा विद्यमान रहने वाली महान् इच्छा के कारण भूत मन और वचन से होने वाले पाप के आगमन को भलीभाँति निग्रह करने वाला है। इस व्रत में संयत मन से हाथ-पैरों को पर द्रव्य हरण से रोका जाता है। यह श्रेष्ठ व्रत है। तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट, आस्रव रहित, निर्भय, लोभ-दोष से रहित है। उत्तम मनुष्यों ने, प्रधान बलवान् पुरुषों ने तथा साधुजनों ने इसे मान्य किया है। श्रेष्ठ साधुओं का यह धर्माचार है। ग्राम, आकर, नगर, निगम, खेट, कर्वट मंडप, द्रोणमुख, संबाह, पट्टन, आश्रम आदि में कोई भी वस्तु जैसे—मणि, मोती, शिला, मूँगा, कांसा, वस्त्र, चांदी, सोना, रत्न आदि—पड़ा हो, किसी का खो गया हो—स्वामी को

ढूंढने पर भी न मिला हो, तो साधु को न किसी से कहना कल्पता है न ग्रहण करना कल्पता है। साधु को चांदी-सोने आदि से रहित, पत्थर और सोने को समान समझते हुए, परिग्रह रहित तथा संवर युक्त होकर लोक में विचरना चाहिए। कोई भी द्रव्य खलहान में हो, खेत में हो या अरण्य में हो कोई भी फूल, फल, छाल मञ्जरी, कन्द, मूल, तृण, काष्ठ, शर्करा अल्प मूल्य वाली या बहुमूल्य वाली हो थोड़ी हो या बहुत हो, पर उनके स्वामी की आज्ञा विना उन्हें ग्रहण करना साधु को नहीं कल्पता है। प्रतिदिन अवग्रह-आज्ञा प्राप्त करके लेना कल्पता है। अप्रीतिकारी (या अप्रतीतकारी) गृह में प्रवेश करने का तथा अप्रीतिकारी भोजन पान का त्याग करना चाहिए। इसी प्रकार अप्रतीतकारी के पाट, पाटिया शय्या, संस्तारक वस्त्र, पात्र कंबल दंड, रजोहरण, पाटला, चोलपट्ट मुखवस्त्रिका, पादप्रोंछन, भाजन भण्ड आदि उपकरण नहीं लेने चाहिए। साधु को पर-परि वाद पर दोष कथन और दूसरे के बहाने से किसी वस्तु का लेना, इन दोषों का परित्याग करना चाहिए। दूसरों द्वारा किया गया उपकार साधु को मेटना नहीं चाहिए। दान में विघ्न करने का कार्य, दान का अपलाप दूसरों की चुगली और ईर्षा, इन सब का परित्याग करना चाहिए।

अदत्तादान के अनाराधक—आराधक—जो साधु पीठ फलक, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र कंबल, मुँहपत्ति पादप्रोंछन, पात्र, भण्ड आदि उपकरणों का आचार्य आदि के लिए विभाग नहीं करता तथा (गच्छ के लिए आवश्यक पीठ आदि को स्वार्थ के कारण जो ग्रहण नहीं करता) वह इस व्रत का आराधन नहीं कर सकता। जो तप का चोर है, वचन का चोर है, रूप का चोर है, आचार का चोर है, भाव का चोर है, (रात में) जोर से बोलता है, गच्छ में भेद डालता है कलहकारी है वैरकारी है, विकथा करता है, असमाधि करता है, सदा प्रमाणरहित (३२ कवल से ज्यादा) भोजन

स्थान, मण्डप, सूना घर, श्मशान, पर्वत-गृह (लयन) दुकान, इत्यादि ऐसे स्थानों में साधु को रहना चाहिए। वह स्थान (सचित्त) पानी, मिट्टी, बीज, हरित काय, त्रस जीव आदि से रहित हो और गृहस्थ ने अपने उपयोग के लिए बनवाया हो—प्रासुक हो तथा स्त्री-पुरुष-पण्डक से रहित और प्रशस्त हो।

जहाँ साधु के निमित्त पाप-कर्म किया गया हो—जैसे—पानी का छिडकाव किया गया हो, झाड़ू से झाडा हो, खूब पानी सींचा हो, सजाया हो, दरी या चटाई बिछाई गई हो, सफेदा या रङ्ग किया हो, लीपा हो, लिपे पर फिर लीपा हो, (शीत हटाने के लिये) आग जलाई हो, बर्तन इधर से उधर किये हों, इस प्रकार मकान के भीतर या बाहर साधु के निमित्त सावद्य कर्म किया गया हो—जहाँ असयम की वृद्धि हो, ऐसा आधाकर्मी शास्त्र—निषिद्ध उपाश्रय साधु को वर्जनीय है।

इस प्रकार विविक्तवास समिति के योग से भावित अन्तरात्मा दुर्गति में ले जाने वाले पाप-कर्मों के करने-कराने के दोष से नित्य विरत होता हुआ दत्त-अनुज्ञात अवग्रह की (दत्तादान) की रुचि वाला बनता है।

दूसरी भावना—आराम-उद्यान-कानन और वन प्रदेश में जो कोई भी अचित्त इक्कड-कठिनक-जतुग (एक प्रकार के घास), परा, मूज, कुश, दूब, पयाल, मूयग (मेवाड़ी घास) वल्वज (घास-विशेष), पुष्प, फल, छाल, अकुर, मूल, तृण, काष्ठ, काकरी, आदि सन्तारक के लिये आवश्यक हो वे आज्ञा मॉग कर लेने कल्पते हैं। बिना आज्ञा-अदत्त लेना नहीं कल्पता। प्रतिदिन आज्ञा लेकर लेना कल्पता है।

इस प्रकार अवग्रह समिति के योग से भावित अन्तरात्मा दुर्गति ले जाने वाले पापकर्मों को करने-कराने के दोष से नित्य विरत होता हुआ दत्त-अनुज्ञात अवग्रह की रुचि वाला बनता है।

तीसरी भावना—पीठ फलक-शय्या या सस्तारक के लिए वृक्ष नहीं काटना चाहिये। छेदन-भेदन क्रिया कर के शय्या नहीं बनवानी चाहिये।

स्थान, मण्डप, सूना घर श्मशान, पर्वत-गृह (लयन) दुकान, इत्यादि ऐसे स्थानों में साधु को रहना चाहिए। वह स्थान (सचित्त) पानी, मिट्टी, बीज, हरित काय, त्रस जीव आदि से रहित हो और गृहस्थ ने अपने उपयोग के लिए बनवाया हो—प्रासुक हो तथा स्त्री-पुरुष-पण्डक से रहित और प्रशस्त हो।

जहाँ साधु के निमित्त पाप-कर्म किया गया हो—जैसे—पानी का छिड़काव किया गया हो, झाड़ू से झाड़ा हो खूब पानी सींचा हो, सजाया हो, दरी या चटाई बिछाई गई हो, सफेदा या रङ्ग किया हो, लीपा हो, लिपे पर फिर लीपा हो, (शीत हटाने के लिये) आग जलाई हो, बर्तन इधर से उधर किये हों, इस प्रकार मकान के भीतर या बाहर साधु के निमित्त सावद्य कर्म किया गया हो—जहाँ असयम की वृद्धि हो, ऐसा आधाकर्मी शास्त्र—निषिद्ध उपाश्रय साधु को वर्जनीय है।

इस प्रकार विविक्तवास समिति के योग से भावित अन्तरात्मा दुर्गति में ले जाने वाले पाप-कर्मों के करने-कराने के दोष से नित्य विरत होता हुआ दत्त-अनुज्ञात अवग्रह की (दत्तादान) की रुचि वाला बनता है।

दूसरी भावना—आराम-उद्यान-कानन और वन प्रदेश में जो कोई भी अचित्त इक्कड़-कठिनक-जतुग (एक प्रकार के घास), पर, मूंज, कुश, दूब, पयाल, मूयग (मेवाड़ी घास) बल्वज (घास-विशेष), पुष्प, फल, छाल, अकुर, मूल, तृण, काष्ठ, कांकरी, आदि सन्तारक के लिये आवश्यक हों वे आज्ञा मॉग कर लेने कल्पते हैं। बिना आज्ञा-अदत्त लेना नहीं कल्पता। प्रतिदिन आज्ञा लेकर लेना कल्पता है।

इस प्रकार अवग्रह समिति के योग से भावित अन्तरात्मा दुर्गति ले जाने वाले पापकर्मों को करने-कराने के दोष से नित्य विरत होता हुआ दत्त-अनुज्ञात अवग्रह की रुचि वाला बनता है।

तीसरी भावना—पीठ फलक-शय्या या सस्तारक के लिए वृक्ष नहीं काटना चाहिये। छेदन-भेदन किया कर के शय्या नहीं बनवानी चाहिये।

जिसके गृह में निवास किया हो वहीं शय्या की गवेषणा करनी चाहिये। ऊँची-नीची जमीन को सम नहीं करना चाहिये। हवा का अभाव हो या अधिक हवा आती हो तो कुछ भी प्रतीकार नहीं करना चाहिये। डाँस मच्छरों का उपद्रव हो तो भी क्षोभ नहीं करना चाहिये और अग्नि या धुआँ नहीं करना चाहिये। इस प्रकार जो पृथ्वी काय आदि जीवों के रक्षण में तत्पर, आस्रव रोकने में तत्पर, कषाय और इन्द्रियों के निग्रह में तत्पर, चित्त की समाधि में तत्पर, धैर्यवान्, काय से (न केवल मनोरथ से) चारित्र का पालन करता हुआ, अध्यात्म-ध्यान से युक्त होता है वह रागादि से रहित होकर धर्म का आचरण करता है।

इस प्रकार शय्या समिति के योग से भावित अन्तरात्मा दुर्गति में ले जाने वाले पाप कर्मों के करने कराने के दोष से विरत होता हुआ दत्त—अनुज्ञात अवग्रह की रुचि वाला बनता है।

चौथी भावना—संयमी साधु को साधारण अनेक गृहों का आहार—जो पात्र में आवे उसे सम्यक् प्रकार से ग्रहण करना चाहिये। आहार में से शाक आदि का अधिक भाग नहीं लेना चाहिये, भोजन का अधिक भाग नहीं लेना चाहिए (अन्यथा अन्य साधुओं को अप्रतीत होती है।) उतावले-उतावले नहीं खाना चाहिए, त्वरित रूप से आहार नहीं करना चाहिए, चपलता पूर्वक तथा सहसा आहार नहीं करना चाहिए, दूसरों को पीड़ा हो इस प्रकार का आहार भी नहीं करना चाहिए और न सावद्य आहार ही करना चाहिए। आहार इस प्रकार लेना चाहिए जिससे तृतीय व्रत खण्डित न हो। साधारण पिंड-पात्र-आहार मात्र लेना चाहिए और सूक्ष्म अदत्तादान विरमण व्रत का भी रक्षण करना चाहिए।

इस प्रकार साधारण पिंड-पात्र समिति के योग से भावित अन्तरात्मा, दुर्गति में ले जाने वाले पापकर्मों के करने-कराने के दोष से सदा विरत होता हुआ दत्त-अनुज्ञात अवग्रह की रुचि वाला बनता है।

पाँचवीं भावना—साधर्मी के प्रति विनय रखना चाहिए। उपचार-

रोगी की सेवा मे तथा पारणा मे विनय करना चाहिए। वाचना मे तथा परिवर्तना (सूत्रार्थ के दुहराने) मे विनय करना चाहिए। भोजन आदि के दान मे, ग्रहण मे, सूत्रार्थ की पृच्छना मे विनय मे वरतना चाहिये। निकलते समय, प्रवेश करते समय विनय पूर्वक वरतना चाहिए। इसी प्रकार अन्य सैकडों कार्यों मे विनय करना चाहिए। विनय तप है और तप धर्म है, अतएव गुरुओं के, साधुओं के तथा तपस्वियों के प्रति विनीत व्यवहार करना चाहिए।

इस प्रकार विनय मे भावित अन्तरात्मा दुर्गति मे ले जाने वाले पाप-कर्मों के करने-कराने के दोषों से सदा विरत होता हुआ दत्त-अनुज्ञात अवग्रह की रुचि वाला बनता है।

इस प्रकार इस संवर द्वार का भली भाँति आचरण करने से आत्मा सुरक्षित होता है। (यावत्-पूर्वोक्त विशेषण विशिष्ट) यह संवर द्वार पूज्य है, तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट है, प्रशस्त है।

नौवाँ अध्याय

चतुर्थ संवर द्वार—ब्रह्मचर्य

श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं—हे जम्बू ! यह ब्रह्मचर्य नामक चौथा सवर द्वार है।

ब्रह्मचर्य उत्तम तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व तथा विनय का मूल है। यम और नियम रूप प्रधान गुणों से युक्त है। हिमवान् पर्वत से महान् और तेजस्वी है। ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करने से मनुष्य का अन्त करण प्रशान्त, गम्भीर और स्थिर हो जाता है। ब्रह्मचर्य सरल साधुजनों द्वारा आचरित है, मोक्ष का मार्ग है, निर्मल सिद्ध गति का स्थान है, शाश्वत है, अव्यावाध है पुनर्भव रोकने वाला है, प्रशस्त है, सौम्य है, सुखरूप है, शिव है, अचल है, अक्षयकारी है, यतिवर्गों द्वारा पालन किया हुआ है, सुचरित है, सुसाधित है। मुनिवरों ने, महापुरुषों ने, धीर-वीरों ने, धर्मात्माओं ने, धृतिमानों ने ब्रह्मचर्य का सदा (आजीवन) पालन किया है। भव्यजनों ने इसका आचरण किया है। यह शका रहित है, भय रहित है, तुष रहित (तदुल के समान) है, खेद के कारणों से रहित है, पाप की चिकनाहट से रहित है, समाधि का घर है, नियम से निश्चल है, तप-सयम का तना है, पाँचों महाव्रतों

मे अत्यत (निरपवाद) पालन किया जाने वाला है, समिति-गुप्ति मे युक्त है, उत्तम ध्यान की रक्षा के लिए निर्माण किये गये कपाटों के समान है, शुभ ध्यान की रक्षा के लिए अर्गल (आगल) के समान है, दुर्गति के मार्ग को रोकने तथा आच्छादित करने वाला है, सद्गति का पथ प्रदर्शक है, और लोक मे उत्तम है।

यह व्रत पद्म सरोवर और तालाब की पाल के समान (धर्मरक्षक) है, महा शकट के आरों की नाभि के समान (क्षमा आदि गुणों का आधार) है, अत्यन्त विस्तार वाले वृक्ष के स्कंध के समान है, किसी विशाल नगर के प्राकार के किवाड़ों के आगल के समान है, रस्सी से बँधे हुए इन्द्र-ध्वज के समान है, तथा अनेक विशुद्ध गुणों से युक्त है।

ब्रह्मचर्य का भङ्ग होने पर सभी व्रतों का तत्काल भग हो जाता है। सभी व्रत-विनय, शील, तप, नियम, गुण आदि दही के समान मथित हो जाते हैं, चूर-चूर हो जाते हैं, बाधित हो जाते हैं, पर्वत के शिखर से गिरे हुए पत्थर के समान भ्रष्ट हो जाते हैं, खण्डित हो जाते हैं, उनका विध्वस हो जाता है, विनाश हो जाता है।

ब्रह्मचर्य महिमा—यह ब्रह्मचर्य भगवान् है (१) ग्रह, नक्षत्र और तारों में चन्द्रमा के समान, (२) मणि, मोती, शिला मूँगा और लाल की खनों मे समुद्र के समान (३) मणियों में वैडूर्य मणि के समान (४) सब आभूषणों मे मुकुट के समान, (५) वस्त्रों मे क्षौमयुगल (रुई के वस्त्र) के समान (६) सब पुष्पों मे कमल के समान, (७) चन्दनों मे गोशीर्ष चन्दन के समान (८) औषाध स्थानों मे हिमवत पर्वत के समान (९) नदियों मे सीतोदा नाम की नदी के समान (१०) समुद्रों में स्वयभूरमण समुद्र के समान (११) मडलिक पर्वतों म रुचक पर्वत के समान (१२) हाथियों में ऐरावत के समान (१३) जङ्गली पशुओं में सिंह के समान (१४) सुवर्णकुमार देवों मे वेणुदेव के समान (१५) पन्नग (नागकुमार) देवों मे धरणेन्द्र के समान (१६) देवलोकों मे

ब्रह्मलोक नामक पॉचवे देवलोक के समान (१७) सभाओं मे सुधर्मा सभा के समान (१८) आयुओं में अनुत्तर विमान के देवों की लव-सप्तम आयु के समान (१९) दानों में अभयदान के समान (२०) कम्बलों में किरमिची रग के कम्बल के समान (२१) सहननो मे वज्रऋषभनाराच सहनन के समान (२२) सस्थानों मे समचतुरस्त्र सस्थान के समान (२३) ध्यानों मे परम शुक्ल ध्यान के समान, (२४) ज्ञानो में केवल ज्ञान के समान,(२५) लेश्याओं मे परम शुक्ल लेश्या के समान, (२६) मुनियो मे तीर्थंकर भगवान् के समान, (२७) क्षेत्रों में महाविदेह के समान, (२८) गिरिवरों मे सुमेरु के समान, (२९) वनों में नन्दन वन के समान, ब्रह्मचर्य सब व्रतों म श्रेष्ठ और प्रधान है। (३०) वृक्षों में जम्बू-सुदर्शन नामक वृक्ष जैसे विख्यात है और जिसके नाम से यह द्वीप जम्बू द्वीप कहलाता है, (३१) राजाओं मे जैसे अश्वपति-गजपति-रथपति नरपति विख्यात हैं, (३२) जैसे रथियों मे महारथी (वासुदेव) प्रधान है इसी प्रकार ब्रह्मचर्य सब व्रतों मे श्रेष्ठ और प्रधान है।

अकेले ब्रह्मचर्य की आराधना करने वाले को ऐसे अनेक गुण पूर्ण-रूप से प्राप्त होते हैं। इस व्रत का सम्यक् प्रकार से पालन करने पर ही शील, तप, विनय, सयम, क्षमा, गुप्ति, निर्लोभता आदि सब व्रतों का पालन होता है। इससे इस लोक तथा परलोक मे यश-कीर्ति तथा प्रतीति होती है। अत. निश्चल भाव से तीन करण तीन योग से यावज्जीवन जब तक शरीर श्वेत अस्थिमय रहे तब तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये।

भगवान् ने ब्रह्मचर्य व्रत के विषय में ऐसा कहा है·—

ब्रह्मचर्य पाँच महाव्रतों का मूल है कषाय रहित साधुजनों ने भाव-पूर्वक इसका आचरण किया है। वैर को शान्त करना ब्रह्मचर्य का फल है। महा समुद्र के समान ससार से पार होने के लिये तीर्थ (घाट) रूप है॥ १ ॥

तीर्थंकरों द्वारा सम्यक् प्रकार से प्रदर्शित मार्ग है, नरक गति और तिर्यंच गति से बचने का मार्ग है, समस्त पावन वस्तुओं-विधानो का सार है और मोक्ष तथा स्वर्ग का द्वार खोलने वाला है ॥ २ ॥

ब्रह्मचर्य देवेन्द्र और नरेन्द्रों द्वारा पूजितों का भी पूज्य है, समस्त ससार मे उत्तम मगलों का मार्ग है। उसको कोई अभिभव नहीं कर सकता, वह श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति का अद्वितीय साधन है और मोक्ष के कारणों मे श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

ब्रह्मचर्य का निरतिचार पालन करने वाला ही सुब्राह्मण है, सुश्रमण है, सुसाधु है। जो ब्रह्मचर्य का शुद्ध पालन करता है वही ऋषि है, वही मुनि है वही सयमी है, और वही भिक्षु है।

ब्रह्मचारी के अकर्तव्य कर्तव्य—ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले को इन बातो का सदैव परित्याग करना चाहिये —

रति-राग-द्वेष-मोह की वृद्धि करने वाले निस्सार, प्रमादवर्धक कार्य, पासत्थों का अनुष्ठान, अभ्यगन (उबटना वगैरह), तैल मर्दन, स्नान, बारम्बार कॉख-सिर-हाथ-पैर मुख धोना सवाहन (अग चपी) गात्र कर्म, परिमर्दन (मालिश) अँगविलेपन, सुगन्धित चूर्णों से शरीर सुवासित करना, (अगर आदि) धूप से शरीर को धूपित करना, जिस प्रकार चारित्र भग हो उस प्रकार नख वस्त्र केशादि को सँवारना, हँसना, विकार वाले वचन बोलना, नृत्य करना, गीत गाना, बाजा बजाना, नटों, नर्तकों जल्ल-मल्ल आदि के खेल देखना, विदूषकों की चेष्टा देखना, इत्यादि शृगार और राग के घर के समान तप, सयम और ब्रह्मचर्य को एक देश या सर्व देश से नाश करने वाले व्यापार ब्रह्मचारी को सदव के लिये त्याग देने चाहिए। सदा काल तप, नियम, शील, योग के द्वारा अतरात्मा की भावना करनी चाहिए। वे क्या हैं ?

स्नान न करना, दातन न करना, स्वेद मैल-गाढ मैल को धारण करना—हटाना नहीं, मौन रखना, केशों का लोच करना, क्षमा रखना,

इन्द्रिय-दमन करना, शास्त्रानुसार परिमित वस्त्र रखना, भूख-प्यास सहन करना, लाघव (अल्प उपधि रखना), सर्दी गर्मी सहना, लकड़ी की शय्या या भूमि पर बैठना, भिक्षा के हेतु दूसरों के घर जाना, आहारादि के मिलने पर, कम मिलने पर, या न मिलने पर, मान-अपमान होने पर, निन्दा होने पर (सम भाव से) सहन करना, डाम-मच्छर का परिषद् सहना, तथा नियम, तप, गुण, विनय आदि योग से अन्तरात्मा को भावित करना चाहिए, इससे ब्रह्मचर्य अधिक स्थिर होता है।

यह प्रवचन भगवान् ने अब्रह्मविरमण व्रत की रक्षा के लिए सम्यक् प्रकार से कहा है। यह परलोक मे हितकारी है, आगामी काल में कल्याणकारी है, निर्मल है, न्याययुक्त है, सरल है, श्रेष्ठ है, समस्त दु.खों और पापों को शान्त करने वाला है।

पाँचभावनाएं—अब्रह्मविरमणव्रत की रक्षा के लिए चौथे व्रत की पाँच भावनाये यह हैं.—

पहली भावना—शय्या, आसन, गृह, द्वार, आँगन अगासी, गवाक्ष, शाल, अभिलोकन-स्थान (बहुत ऊँचा स्थान-जहाँ से सब दिखाई पड़े) पिछला घर शृगार गृह, स्नान गृह, तथा वेश्याओं के रहने का स्थान, जहाँ मोह-दोष और रति-राग वढाने वाली स्त्रियाँ सदा रहती हों ऐसा स्थान, जहाँ तरह-तरह की विकथाये की जाती हों, वह स्थान वर्जनीय है। इसी प्रकार अन्य स्थान भी जो स्त्री ससर्ग के कारण सक्लेशकारी हों, वर्जनीय हैं। जहाँ रहने से चित्त में अस्थिरता उत्पन्न होती हो, ब्रह्मचर्य का सर्वदेश या एक देश से भग होता हो, आर्त्तध्यान-रौद्रध्यान उत्पन्न होता हो, वह स्थान भी वर्जनीय है। पाप भीरु तथा अन्त प्रान्तवासी साधु को ऐसे स्थान का आश्रय नहीं लेना चाहिए। इस प्रकार स्त्री ससर्ग रहित स्थान में वसने की समिति के योग से जिसका अन्तरात्मा भावित होता है वह इन्द्रियों के विषयों मे विरक्त, जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य गुप्ति से युक्त होता है।

द्वितीय भावना—केवल स्त्रीजन के समुदाय मे कथा नहीं कहनी चाहिए। विविध प्रकार की कथा बिब्बोक (शृगार की चेष्टा-विशेष) तथा विलास से युक्त, हास्य, शृगार एव लोक सम्बन्धी कथा (बात-चीत) न करना चाहिए। आवाह (नवविवाहित वर-वधू को लाना) तथा विवाह सम्बन्धी कथा—जो मोह को उत्पन्न करती है न करनी चाहिए। स्त्रियों की सुन्दरता-असुन्दरता सम्बन्धी कथा न करनी चाहिए। स्त्रियों कि चौंसठ (६४) कला, गुण, वर्ण, देश, जाति, कुल, रूप, नाम, नेपथ्य (गुप्त शृगार क्रिया) परिजन, आदि से सम्बन्ध रखने वाली कथा (बात-चीत) नहीं करना चाहिए। स्त्री कथा तथा अन्य ऐसी-ऐसी शृगार करुण कथाएँ तप-सयम का घात करती हैं। अत ब्रह्मचारी को यह कथाएँ न करना चाहिए, न सुनना चाहिए, न इनका विचार ही करना चाहिए।

इस प्रकार स्त्री कथा से निवृत्ति रूप समिति के योग से भावित अन्तरात्मा ब्रह्मचर्य मे आसक्त मनवाला, इन्द्रिय लोलुपता मे रहित, जितेन्द्रिय तथा ब्रह्मचर्य-गुप्तिवाला होता है।

तीसरी भावना—स्त्री का हास्य, विकार युक्त वचन, चेष्टा, नजर, गति, विलास, क्रीडा, बिब्बोक, नृत्य, गीत, बाजा बजाना. शरीर की बनावट, रग-रूप, हाथ, पैर, नेत्र, लावण्य, आकार, यौवन, स्तन, अधर, वस्त्र, अलकार सजावट, गुह्य अग तथा इसी प्रकार की अन्य पापजनक वस्तुएँ, जो तप-सयम तथा ब्रह्मचर्य का पूर्ण या आशिक रूप मे घात करती हों, ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करने वाले को नयन, मन, और वचन मे त्याग देनी चाहिए।

इस प्रकार स्त्री रूपविरति समिति के योग से भावित अन्तरात्मा ब्रह्मचर्य में आसक्त, इन्द्रियों की लोलुपता से रहित, जितेन्द्रिय तथा ब्रह्मचर्य गुप्ति से युक्त होता है।

चौथी भावना—पहले (गृहस्थ अवस्था मे) भोगे हुए काम भोगों

का, पहले की करी हुई क्रीडाओं का, पहले के श्वसुर आदि सम्बन्धियों का उनके भी सम्बधियों का तथा परिचित जनों का, स्मरण नहीं करना चाहिए। तथा आवाह, (वधू का आगमन) विवाह और बालक के चूडाकर्म के अवसर पर, विशिष्ट तिथियों मे, यज्ञ (नाग पूजा आदि) तथा उत्सव (इन्द्रोत्सव आदि) के प्रसग पर शृगार से सजी हुई सुन्दर-वेप वाली स्त्रियों के साथ, हाव-भाव, ललित, विक्षेप, विलास से सुशोभित अनुकूल प्रेमिकाओं के साथ पहले शयन या सानिध्य किया हो उसका स्मरण नहीं करना चाहिए। ऋतु के अनुकूल सुन्दर पुष्प, सुरभि चन्दन, सुगधित द्रव्य, सुगधित धूप, सुखद स्पर्श वाले वस्त्र, आभूषण, आदि से सुशोभित स्त्रियों के साथ भोगे हुए भोगों का स्मरण नहीं करना चाहिए। रमणीय वाद्य, गीत, नट, नर्तक (नाटक), जल्ल (रस्सी पर खेल करने वाला नट) मल्ल, मुष्टिक (मुट्ठी से कुश्ती करने वाला मल्ल), विदूपक, कथाकार, तैराक, रास करने वाले-भाड, शुभाशुभ बताने वाले आख्यायक, लख (बडे बास पर खेल करने वाले), मख (चित्रपट दिखाकर भीख मांगने वाले) तुम्बा बजाने वाले, ताल देने वाले प्रेक्षक, इन सब की क्रियाओं को तथा भाँति-भाँति के मधुर स्वर से गाने वालों के गीतों को, तथा इनके अतिरिक्त तप-सयम ब्रह्मचर्य का एक देश या सर्व देश से घात करने वाले व्यापारों को, ब्रह्मचर्य की आराधना करने वाला पुरुष त्याग दे। वह न कभी इनका कथन करे न स्मरण करे।

इस प्रकार पूर्व रत-पूर्वक्रीडितविरति—समिति के योग से भावित अन्तरात्मा ब्रह्मचर्य मे रत, इन्द्रिय लोलुपता से रहित, जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य गुप्ति वाला होता है।

पाँचवीं भावना—जिसमें घी-तेल के बूँद टपकते हों ऐसे पौष्टिक भोजन का परित्याग करने वाला सयमी ही सुसाधु होता है। दूध, दही, घी, मक्खन, तेल, गुड़, खाड़, शक्कर, मधु, खाजा (आदि मिष्टान्न) आदि विगयों से रहित भोजन करने वाला, साधु दर्पकारी आहार ग्रहण न करे,

दिन में बहुत बार आहार न करे, प्रतिदिन सरस आहार न करे, शाक-दाल न खावे, अधिक आहार न करे। संयमी को ऐसा आहार करना चाहिये जिससे केवल संयम यात्रा का निर्वाह हो, मोह का उदय न हो और ब्रह्मचर्य धर्म भग न हो।

इस प्रकार प्रणीत-आहार विरति समिति के योग से भावित अंत-रात्मा ब्रह्मचर्य में आसक्त मन वाला इन्द्रिय विषयों से विरक्त, जिते न्द्रिय और ब्रह्मचर्य गुप्त होता है।

इस प्रकार इस संवर द्वार का सम्यक् प्रकार से आचरण करके आत्मा सुरक्षित बनता है। मन, वचन, काय से परिपालित इन पाँचों भावनाओं के द्वारा धैर्यवान् और मतिमान साधु को यह योग आमरण पालन करना चाहिए। यह योग आस्रव रहित, निर्मल, निश्छिद्र, अपरि-स्रावी, सक्लेश रहित शुद्ध और समस्त तीर्थंकरों द्वारा अनुज्ञात है।

इस प्रकार इस संवर द्वार का मुनियों द्वारा स्पर्शन, पालन, शोधन, तरण कीर्तन, आराधन तथा जिनाज्ञा से अनुपालन किया गया है।

ऐसा भगवान ज्ञात मुनि (भ० महावीर) ने उपदेश दिया है, प्ररूपण किया है प्रसिद्ध किया है। यह जिनेश्वर देव का शासन पूजनीय है, सदुपदेशित है, प्रशस्त है।

दसवाँ अध्याय

पञ्चम संवर द्वार—अपरिग्रह

श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं—हे जम्बू ! (पूर्वोक्त अहिंसा आदि के अतिरिक्त) जो परिग्रह से रहित होता है तथा इन्द्रिय कषाय संवर से संवृत्त होता है वही श्रमण होता है ।

जो आरम्भ-परिग्रह से रहित है, क्रोध-मान-माया-लोभ से रहित है, वही श्रमण है ।

[मिथ्यात्व रूप परिग्रह का विस्तृत वर्णन]

सामान्य रूप से एक प्रकार का असयम, दो प्रकार का वध (राग वध, द्वेष वध), तीन प्रकार के दंड, गर्व, गुप्ति और विराधना, चार प्रकार के कषाय, ध्यान, संज्ञा और विकथा, पाँच प्रकार की क्रिया, समिति, इन्द्रिय और महाव्रत, छह प्रकार के जीवनिकाय और लेश्या, सात प्रकार के भय, आठ प्रकार के मद, नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्ति (वाड), दस प्रकार का साधु धर्म, ग्यारह प्रकार की श्रावक की पडिमा (प्रतिमा), बारह प्रकार की भिक्षु की पडिमा, तेरह प्रकार के क्रिया-स्थानक, चौदह प्रकार के जीव, पन्द्रह प्रकार के परमाधर्मी देव सोलह सूत्रकृताङ्ग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के अध्ययन, सत्तरह प्रकार

का असयम, अठारह प्रकार का ब्रह्मचर्य, उन्नीस ज्ञातासूत्र के अध्ययन, बीस प्रकार के असमाधिस्थान इक्कीस प्रकार के शवल (चारित्र मलिन करने वाले) कर्म, बाईस परीषह तेईस सूत्रकृताङ्ग सूत्र के अध्ययन, चौवीस प्रकार के देव, पच्चीस पाँच महाव्रतों की भावनाएँ छब्बीस दशाश्रुतस्कन्ध, वृहत्कल्प और व्यवहार सूत्र के उद्देशक, सत्ताईस साधु के गुण, अट्ठाईस प्रकार के आचारकल्प, उनतीस प्रकार के पाप सूत्र, तीस मोहनीय कर्म के स्थानक, इकतीस सिद्ध भगवान् के गुण, बत्तीस प्रकार का योग सग्रह (प्रशस्त व्यापार), तेतीस आसातना, बत्तीस इन्द्र* इस प्रकार क्रमश एक एक सख्या बढाते हुए-तेतीस पर्यन्त इनमें तथा विरति (प्राणातिपात से विरमण) मे प्रणिधि (एकाग्रता आदि) मे, अविरति मे और इनके अतिरिक्त बहुत से (सभी) जिन भगवान् द्वारा प्ररूपित, समीचीन शाश्वत भावों मे, अवस्थित भावों मे शका काक्षा को दूर करके जो जिन शासन मे श्रद्धा करता है वही श्रमण है।

जो निदान (नियाणा) रहित है, ऋद्धि आदि के गौरव से रहित है, लपट नहीं है, मूढ नहीं है, मन-वचन-काय से गुप्त है वही श्रमण है।

सवर तरु—यह सवर रूप श्रेष्ठ तरु अन्तिम सवर द्वार है। भगवान् महावीर के वचनों के अनुसार की जाने वाली परिग्रह निवृत्ति सवर-तरु का विस्तार है, उसके अनेक प्रकार हैं, सम्यग्दर्शन उसका विशुद्ध मूल है, धृति (मानसिक समाधि) कन्द है, विनय वेदिका (क्यारी) है, तीनों लोकों में फैला हुआ विपुल यश ही घना-मोटा-बडा-सुन्दर तना है, पॉच महाव्रत विशाल शाखायें हैं अनित्य आदि भावनाये छाल हैं, ध्यान-शुभ योग और ज्ञान उसकी कोंपलें और अकुर हैं, वह अनेक गुण रूपी पुष्पों से समृद्ध है, शील रूपी सुगन्ध वाला, अनास्रव रूपी फल वाला, मोक्ष रूपी बीज (मींगी) से युक्त, यह सवर-तरुवर

*इन चौंतीस सख्यावाचक नामों के भेद प्रभेदों का विस्तार, पुस्तक के अधिक बढ जाने से नहीं किया गया है

मेरु पर्वत के शिखर की चोटी के समान मोक्ष के बीज रूप मुक्ति (निर्लोभता) मार्ग के शिखर के समान है।

इस अपरिग्रह रूप सवर द्वार मे साधु को यह नहीं कल्पता है —

साधु के अकर्त्तव्य—ग्राम-आगर-खेटक-कर्वट-मण्डव द्रोण मुख पट्टन आश्रम मे जो कुछ भी थोड़े या बहुत मूल्य वाला, छोटा या मोटा, शख आदि त्रसकाय रूप या रत्न आदि स्थावर काय रूप (सचेतन-अचेतन) अथवा अन्य कोई भी द्रव्य मन से भी ग्रहण करना नहीं कल्पता है।

हिरण्य-सुवर्ण-क्षेत्र-वास्तु ग्रहण करना नहीं कल्पता, दासी-दास-भृत्य प्रेषक-(सदेशवाहक) घोडा-हाथी गाय (तथा मेढा आदि) ग्रहण करना नहीं कल्पता,। यान-वाहन शयन-आसन-छत्र आदि ग्रहण करना नहीं कल्पता कमण्डलु-जूता-मयूर की पींछी-बिजना-ताड़ का पङ्खा-ग्रहण करना नहीं कल्पता, लोहा-कथीर-तांबा-शीशा कासा-चादी-सोना-मणि सीप-शख हाथी आदि के दात की मणि-सींग पाषाण (उत्तम) काच वस्त्र-चर्म तथा इनके पात्र जो बहुमूल्य हैं और दूसरों को ग्रहण करने की उत्सुकता तथा लालसा उत्पन्न करते हैं वे साधु के लिये अकल्पनीय हैं। पुष्प फल-कन्द-मूल आदि सत्तरह प्रकार के बीज तथा सब प्रकार के बीज मूल गुण आदि से सम्पन्न साधु को मन-वचन-काय से औषध-भेषज-भोजनादि के लिये नहीं कल्पते हैं। क्यो नहीं कल्पते हैं? अपरिमित ज्ञान-दर्शन के धारी शील-गुण-विनय तप सयम के नायक, तीर्थ की स्थापना करने वाले, समस्त ससार के प्राणियों के हितकारी, त्रिलोक-पूज्य जिनवरों ने इन्हें त्रस जीवों का उत्पत्ति स्थान देखा है और उत्पत्ति स्थान का नाश करना कल्पता नहीं है अत. श्रेष्ठ मुनि पुष्प-फल-धान्य आदि का परित्याग करते हैं।

तथा भात-(पके) उड़द, गज (एक प्रकार का खाद्य पदार्थ) सत्तू, वेर आदि का चूर्ण, (सिका हुआ) धान, तिलों का चूर्ण, दाल, तिल-पट्टी, वेढिम (खाद्य विशेष) मीठे रस मे डाले हुए पकवान (गुलाब-

जामुन वगैरह, चूर्ण कोशक (जिसके भीतर मीठे पदार्थ भरे हों) गुड़ आदि का पिंड, श्रीखंड, बड़ा, लड्डू, दूध, दही, घी मक्खन, तेल, गुड़ खांड, शक्कर, शहद, खाजा विविध प्रकार के रायते, चटनी आदि-आदि प्रणीत रस वाले पदार्थ उपाश्रय में, पराये घर में अथवा अरण्य में रहते हुए भी साधु को संचय नहीं करना चाहिए।

जो आहार पानी सामान्यतः किसी भी साधु के उद्देश से बनाया गया हो, साधु के लिये रख छोड़ा हो, साधु के लिए खास तौर से तैयार किया गया हो, रूपान्तर कर के रखा हो, गिराता हुआ देता हो, साधु के लिये अंधेरे में उजेला कर के देता हो, उधार लाकर दिया हो, थोड़ा साधु के लिए और थोड़ा अपने लिए बनाने से मिश्र हो, साधु के लिए खरीदा हो, साधु को देने के लिए ही मेहमान को जिमाने का दिन निश्चय किया गया हो अथवा साधु को उपहार रूप में दिया जाता हो, दान-पुण्य के अर्थ दिया हुआ हो, तापस-रंक-याचकों के लिए तैयार किया गया हो, पश्चात्कर्म (साधु को देकर हाथ धोना आदि सावद्य क्रिया) वाला हो, पुराकर्म (पहले की जाने वाली सावद्य क्रिया) से युक्त हो, सदा एक घर का आहार सचित्त पानी आदि से संसृष्ट आहार, अतिरिक्त (३२ कौर से अधिक) आहार, दान दाता की महिमा करने से प्राप्त आहार, साधु के लिए सामने लाया हुआ आहार, मिट्टी आदि से लिपे हुए को उघाड़ कर दिया हुआ आहार, निर्बल—बालक आदि से छीन कर दिया जाने वाला आहार, दो साझीदारों में से एक के द्वारा दूसरे की अनुमति बिना दिया जाने वाला आहार, अमुक तिथि नागपूजा-उत्सव आदि के प्रसंग पर उपाश्रय के भीतर या बाहर साधु के लिये रख छोड़ा हुआ आहार यह सब आहार आदि हिंसा और सावद्य से युक्त होने के कारण साधु के लिये ग्राह्य नहीं हैं।

साधु को कैसा भोजन आदि ग्रहण करना कल्पता है ?—

साधु के कर्त्तव्य—आचारांग सूत्र के पिण्डैषणा अध्ययन के ग्यारहवें उद्दे-

शक मे जो वर्णन किया गया है उसके अनुसार शुद्ध, क्रय-हनन और पचन करना-कराना, अनुमोदन कराना—इन नौ कोटियों से विशुद्ध एपणा के दस दोपों से रहित, उद्‌गम दोषों और उत्पादना दोपों से रहित, जीव संसर्ग से रहित, अचित्त सयोजना दोपों से रहित, अगार तथा धूम्र दोष से रहित, भोजन सम्बन्धी छ स्थानकों (वैयावृत्य आदि) के लिए, पट्‌काय के जीवों की रक्षा के लिए साधु को प्रति-दिन प्रासुक भिक्षा लेनी चाहिए।

सुविहित साधु को अनेक प्रकार के रोग-आतक उत्पन्न हों, वात पित्त या कफ का प्रकोप हो जाय, सन्निपात हो जाय, तनिक भी शान्ति न हो और वलवान् विपुल मन, वचन, तन को कष्ट करने वाला प्रगाढ दु ख उत्पन्न हो जाय, अशुभ, कटुक, कठोर और प्रचड फल भोगना पड़े, महान् भय उत्पन्न हो जाय, जीवन का अन्त कर देने वाले कारण उपस्थित हो जाएँ, सारे शरीर में पीडा उत्पन्न हो जाय, तो भी इस प्रकार के कारण होने पर भी—साधु को अपने लिए या अन्य के लिए औपध, भेपज, आहार पानी का सचय करना नहीं कल्पता।

शुद्ध आचार वाले जो साधु (स्थविर कल्पी) होते हैं उनको भाजन, मिट्टी का वर्तन, उपधि, उपकरण जैसे कि पात्र, पात्र बाधने की झोली, पात्र पूजने का कपडा, पात्र के नीचे रखने का एक चौखुटा कपड़ा रजस्त्राण (पात्र लपेटने का कपड़ा), गुच्छ, तीन प्रच्छादक (शरीर ढँकने के वस्त्र) रजाहरण, चोलपट्ट, मुँहपत्ती, पादप्रोंछन, इतनी वस्तुएँ कल्पती हैं। सयम की वृद्धि के लिए, वायु, ताप, डास, मच्छर, शीत से रक्षा करने के लिए, राग- द्वेप रहित होकर साधु को इन उपकरणों का उपयोग करना चाहिये। साधु को इन भाजन-पात्र आदि उपकरणों की प्रतिदिन प्रति लेखन (पडिलेहण) करनी चाहिए। सब तरफ से देखकर, खोलकर प्रमार्जना करनी चाहिए। तथा प्रमाद रहित होकर उन्हें रखना और उठाना चाहिए।

इस प्रकार करने से साधु धन आदि का त्यागी, निस्सग, परिग्रह की इच्छा से रहित, ममत्वहीन, स्नेह-बन्धन से मुक्त, समस्त पापों से विरत, वासी-चन्दन समान कल्प (समभावी), तृण, मणि, मोती, पत्थर और काचन में समता भाव रखने वाला, मान अपमान मे समान, पापों को शान्त करने वाल , समितियों से युक्त, सम्यग्दृष्टि, सब प्राणियों और भूतों मे समभावी होता है। वही साधु श्रुत का धारक होता है, सरल परिणामी होता है, निर्वाण का साधक होता है, प्राणीमात्र के लिए शरण्य होता है, सम्पूर्ण विश्व का हितकारी होता है, सत्यभाषी होता है, ससार मे रहते हुए भी ससार से मुक्त होता है, सदा मृत्युञ्जय होता है, सब प्रकार के सशयों से अतीत होता है, आठ प्रवचन रूप माता (पाँच समिति, तीन गुप्ति) के द्वारा आठ कर्मों की गाँठ का विमोचक होता है, आठ मदों का मथन करने वाला, अपने सिद्धान्त मे कुशल होता है। वही साधु सुख-दु ख में समान रहने वाला और अतरग—बहिरग तपस्या करने में सदा उद्योगशील रहता है। वह शात, दात, स्वपरहित मे निरत, ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणा समिति-आदान भड मात्रनिक्षेपणसमिति-उच्चार प्रस्रवणखेल-सिंघाण जल्लपरिष्ठावणिया समिति से युक्त होता है, मन-वचन-काय गुप्ति से युक्त होता है, इन्द्रिय-गोप्ता, ब्रह्मचारी, त्यागी, सरल, धैर्य, तपस्वी, समर्थ होकर भी सहिष्णु-क्षमाशील, जितेन्द्रिय, शोभित, आगामी विषय-भोगों की लालसा से रहित, अन्त करण की अन्तवृत्ति वाला, ममताहीन, अकिंचन, राग रहित, निर्मल कासे के बर्तन पर डाले हुए पानी के समान कर्म के लेप से शून्य, शख के समान निरजन--राग-द्वेष मोह से रहित, कूर्म के समान इन्द्रिय गुप्त, उत्तम सोने के समान वास्तविक स्वरूप वाला, कमल के पत्ते के समान निर्लेप, चन्द्रमा के समान सौम्य, सूर्य के समान तेजस्वी, गिरिवर मन्दर पर्वत के समान अचल, समुद्र के समान क्षोभहीन तथा (मानसिक) तरङ्गों से रहित, पृथ्वी के समान सब स्पर्शों

को समभाव से सहन करने वाला, तपस्या के द्वारा भस्म से ढँकी हुई अग्नि के समान, जलती अग्नि के समान तेज से जाज्वल्यमान, गोशीर्ष चन्दन के समान शीतल तथा (शील की) सुगन्ध से युक्त, नद के समान समभावी, चमकते हुए दर्पण-मण्डल के तल के समान प्रकट रूप से शुद्ध भाव-युक्त, शूरवीर हाथी या वृषभ के समान उठाये हुए (पच-महाव्रत रूप) भार को वहन करने में समर्थ होता है। जैसे सिंह पशुओं का स्वामी है और पशु उसका पराभव नहीं कर सकते उसी प्रकार परीषह साधु का पराभव नहीं कर सकते। वह शरद् ऋतु के जल के समान स्वच्छ-हृदय, भारण्ड पक्षी के समान अप्रमत्त, गेंडा नामक एक सींग वाले जगली जानवर के समान रागादि रहित होने के कारण एकीभूत, स्तम्भ के समान ऊर्ध्वकाय कायोत्सर्गधारी, शून्य गृह के समान अप्रति कर्मी (शरीर की सेवा चाकरी न करने वाला), वायु रहित सूने घर या सूनी दुकान में रखे हुए दीपक के समान निष्कम्प ध्यान वाला, छुरा के समान उत्सर्ग रूप एक धार वाला, सर्प के समान एक दृष्टि—मोक्ष की ओर ही लक्ष्य रखने वाला, आकाश की भाँति निरालम्ब, पक्षी की तरह पूर्ण रूप से मुक्त, सर्प की तरह दूसरों के घर में रहने वाला, अग्नि की तरह अप्रतिबद्ध, वायु और जीव की भाँति वे-रोकटोक गति वाला, प्रत्येक गाँव में एक रात*और प्रत्येक नगर में पाँच रात विचरने वाला, जितेन्द्रिय, परीषहजयी निर्भय, विद्वान्, सचित्त-अचित्त-मिश्र द्रव्य में विराग को प्राप्त, सचय से विरत, मुक्त (लोभ रहित) निरभिमानी, निष्काम, जीवन और मृत्यु की आकाक्षा से रहित, चारित्र निष्ठ, निरतिचार चारित्र वाला, धीर, सदा अध्यात्म-ध्यान को काय से स्पर्श करने वाला, उपशान्त और अद्वितीय होकर धर्म का आचरण करे।

भगवान् ने यह प्रवचन परिग्रह विरमण व्रत की रक्षा के लिए कहा है। यह आत्म हितकारी है, परभव में सुख का कारण, भविष्य में कल्या-

*यहा रात्रि शब्द का तात्पर्य एक सप्ताह से है।

स्वरूप, शुद्ध, न्याय युक्त, अकुटिल, अनुत्तर, समस्त दुःखों और पापों को शान्त करने वाला है।

पाँच भावनाएं—इस अंतिम व्रत परिग्रह विरमण की रक्षा के लिए पाँच भावनाएँ होती हैं :—

पहली भावना—श्रोत्रेन्द्रिय से मनोज्ञ और भद्र शब्द सुनकर निस्पृह रहना चाहिए। वे शब्द कौन से हैं ? बड़ा मृदङ्ग, मृदङ्ग, ढोल, बड़ा ढोल, चमड़े से मढ़े मुँह वाला कलश, कच्छभी, वीणा, विपञ्ची, वल्लकी, वद्धीसक, सुघोषा (एक प्रकार का घंटा), नन्दी, सुस्वरपरि-वादिनी (एक प्रकार की वीणा), बाँसुरी तूणक, पर्वक, तन्त्री, ताली, करताल इन सब बाजों के शब्द, गीत, वाद्य, (सामान्य), नट-नर्तक-जल्ल-मल्ल-मुष्टिक भांड-कथक तैराक-रासधारी-शुभाशुभ कहने वाले बांस पर चढ़ कर खेल दिखाने वाले-चित्रपट दिखाकर भीख मांगने वाले तूण बजाने वाले-तुम्बा बजाने वाले-वीणा बजाने वाले तथा ताल देने वालों की विविध क्रियाओं को, बढ़िया गायकों के सुन्दर स्वरों को, कर-धनी मेखला-(एक विशेष प्रकार की करधनी) कलापक-(गले का गहना), प्रतरक-प्रहेरक-पाद जालक (पैरों का आभूषण)-घंटियाँ-छोटी छोटी घंटियों वाला रत्नों का जाघों का आभरण-जलक-चुंद्रिक नूपुर-चलन मालिका (पैरों का गहना)-इन सब आभूषणों के शब्द, जो लीला पूर्वक चलने से उत्पन्न होते हैं, सुन कर साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए। इनके अतिरिक्त तरुणी स्त्रियों के हास्य-बोलचाल-कलरव-गुंजा-रव-मंजुल-तथा स्तुति रूप वचनों को सुनकर आसक्त नहीं होना चाहिए। तथा मधुर लोगों द्वारा बोले हुए बहुत से मनोज्ञ एवं भद्र शब्दों में साधु को न आसक्त होना चाहिए, न राग करना चाहिए, न गृद्ध होना चाहिए, न मुग्ध होना चाहिए, न उनके लिए स्व-पर का घात करना चाहिए, न लुब्ध होना चाहिए, न सतुष्ट होना चाहिए, न हँसना चाहिए, न स्मरण करना चाहिए, न तद्विषयक ध्यान करना चाहिए।

इसी प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय से अमनोज्ञ और पापरूप वचन—जैसे कि आक्रोश वचन-कठोर वचन-निन्दा वचन-अपमान वचन-तर्जना वचन-भर्त्सना-वचन कोप वचन-त्रास वचन- उत्कूजित (अस्पष्ट भयकर ध्वनि) रोना-रटित-क्रदन-पुकार करुणाजनक शब्द-विलाप-सुनकर साधु को न रोष करना चाहिये, न अवज्ञा करना चाहिये, न निंदा करना चाहिए, न खिसियाना चाहिए, न छेदन-भेदन करना चाहिये, न बध करना चाहिये, न स्व-पर के लिए जुगुप्सा (दुगछा) करना चाहिए ।

इस प्रकार श्रोत्र-इन्द्रिय की भावना से भावित मुनि अन्तरात्मा हो जाता है और मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्दों में तथा शुभ-अशुभ शब्दो मे राग-द्वेष का सवरण करने वाला , मन वचन-काय से गुप्त, सवरशील, इन्द्रिय-प्रणिधान से युक्त होकर धर्म का आचरण करता है ।

दूसरी भावना—चक्षु इन्द्रिय से मनोज्ञ, भद्र, सचित्त, अचित्त, मिश्र रूप को तख्ते पर, वस्त्र पर, चित्र मे, लेप्य (मृत्तिका–विशेष) में, शैल मे, पाषाण मे, दात पर, पाँच वर्ण सहित अनेक प्रकार मे सस्थित ग्रथित, वेष्टित, पूरित (भर कर बनाया हुआ), सघातिम (साधकर बनाया हुआ) देख कर, तथा मन और नयनों को अत्यन्त आनन्द देने वाली पुष्प मालाओं को. वनखड, पर्वत, ग्राम, आकर, नगर, पानी की खाई, कमलयुक्त गोल बावडी, चौमुखी बावड़ी, लम्बी बावड़ी, टेढी-मेढी नहर, सरोवर पक्ति, समुद्र, धातु की खान, प्राकार, नदी, प्राकृतिक सरोवर, कृतिम सरोवर, फूले हुए कमलों से शोभित और अनेक प्रकार के पक्षियों के जोड़े, जिनमे विचर रहे हैं ऐसे बाग-बगीचों को देख कर सुन्दर मडप, विविध भवन, तोरण, मूर्तियाँ, मन्दिर, सभा, प्याऊ, परिव्राजक के निवास स्थान, सुन्दर शयन-आसन, पालकी, रथ गाडी, यान, युग्य, (एक प्रकार की सवारी), स्यन्दन इत्यादि के रूप देख कर, सौम्य, मनोज्ञ, दर्शनीय, अलकारों से भूषित, पूर्व कृत तप के प्रभाव मे सौभाग्यशाली, नर-नारियों के रूप देखकर, नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल, मुष्टिक

भाड-कथक्कड, तैराक, रासधारी, शुभाशुभ बताने वाला, लख, मख, तूण बजाने वाला, तुम्बा बजाने वाला, वीणा बजाने वाला-तालाचर इत्यादि की बहुत सी सुन्दर क्रियाओं तथा इस प्रकार की अन्य क्रियाओं सबधी मनोज्ञ और सुन्दर दृश्य देख कर, साधु को आशक्त न होना चाहिए, न राग करना चाहिए, न गृद्ध होना चाहिए, न मोहित होना चाहिए। न उसके लिए स्व-पर घात करना चाहिए, न लुब्ध होना चाहिए, न तुष्ट होना चाहिये, न हँसना चाहिए, न स्मरण करना चाहिए, न तद्विषयक मति करना चाहिए।

तथा साधु को चक्षु से अमनोज्ञ तथा पापरूप रूप में जैसे कि कठमाल का रोगी, कोढी, लगड़ा, जलोदर रोग वाला, खुजली वाला, सूजे पैर वाला, कुबडा, पगु, बौना, अधा, काना, जन्मान्ध, जिसे भूत लग गया हो या लकड़ी के सहारे चलने वाला, रोगी, विकृत कलेवर, जिसमें कीड़े पड़ गये हों ऐसी कोई वस्तु, इन सब तथा ऐसी अन्य अमनोज्ञ और पापरूप वस्तुओं के रूप में—साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए यावत् जुगुप्सा नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार चक्षु इन्द्रिय की भावना से भावित मुनि अन्तरात्मा होता है। और मनोज्ञ-अमनोज्ञ तथा शुभ-अशुभ रूप में राग-द्वेष का सवरण करने वाला, मन-वचन-काय से गुप्त इन्द्रियों का निरोध करने वाला, होकर धर्म का आचरण करता है।

तीसरी भावना—घ्राणेन्द्रिय को मनोज्ञ और भद्र सुगन्ध लेने में सवृत करना चाहिए। जल, स्थल, सरस फूल-फल-पान-भोजन-कुष्ठ (पसारी के यहाँ बेची जाने वाली एक वस्तु)-तगर-सुगन्धित छाल, दमनक (पुष्प-विशेष)-मरुवा-इलायची-जटा मासी-सरस गोशीर्ष चन्दन-कपूर-लौंग-अगर-केशर-कक्कोल (सुगन्धित फल विशेष)-खस खस सफेद चन्दन-सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित धूप, जो मौसिम में उत्पन्न होती और बहुत दूर तक जिनकी सुगध फैलती है ऐसी अन्यान्य मनोज्ञ

और भद्र सुगधों मे श्रमण को न आमक्त होना चाहिए (यावत्) न उनका स्मरण करना चाहिए, न तद्विषयक ज्ञान करना चाहिए।

तथा साधु को अमनोज्ञ तथा अशुभ गध मे—जैसे मरा हुआ सर्प, मरा हुआ घोडा, मरा हुआ हाथी, मरी गाय, मरा भेडिया, मरा कुत्ता, मरा हुआ सियार, मरा हुआ मनुष्य, मरा हुआ विलाव, मरा हुआ सिंह, मरा हुआ चीता, इन सब के कलेवर सड गये हो, छिन्न-भिन्न हो गये हों, कीड़े पड़ गये हों, तीव्र दुर्गन्ध आरही हो तो इनमें तथा ऐसी ही अन्य अमनोज्ञ और अशुभ गधों मे श्रमण को रुष्ट न होना चाहिए। (यावत्-अवहेलना-निंदा-वक्रता-छेदन-भेदन जुगुप्सा नहीं करना चाहिए। इस प्रकार घ्राणेन्द्रिय भावना से जो भावित होता है वह अन्तरात्मा, मनोज्ञ-अमनोज्ञ और शुभ-अशुभ गधों मे राग द्वेष का सवरण करने वाला, मन वचन-काय से गुप्त और) इन्द्रियों का निरोधक होकर धर्म का आचरण करता है।

चौथी भावना—जिह्वा इन्द्रिय को मधुर और मनोज्ञ रस लेते हुए सवृत करना चाहिए। पकवान, नाना प्रकार के पान, गुड़-खाड और तेल घी के बनाये हुए विविध भोजन, तरह तरह के नमकीन भोज्य पदार्थ, मधु, बहुत प्रकार के कीमती भोजन, दूध, दही, सिरका, अठारह प्रकार के शाक, इन मनोज्ञ वर्ण गन्ध रस स्पर्श वाले अनेक द्रव्यों से सस्कार किये गये तथा ऐसे अन्य मनोज्ञ और शुभ रस वाले भोजन मे साधु को न आमक्त होना चाहिए, (यावत्) स्मृति और तद्विषयक मति भी नहीं करनी चाहिए।

रसनेन्द्रिय के द्वारा अमनोज्ञ तथा अशुभ आस्वाद और रस—जैसे कि नीरस-विरस-ठडा-रूखा-नि सत्त्व भोजन पान, तथा रात में बना हुआ जिसका वर्ण बदल गया हो, जो सड़ गया हो, दुर्गन्ध वाला, बहुत सडा हुआ, अतएव अमनोज्ञ हो, अत्यन्त विकृत हो गया हो, तीखा, कडुवा, कसैला, खट्टा, पुराने पानी के समान नीरस रस मे तथा ऐसे ही अन्य

अमनोज एव अशुभ रसों मे श्रमण को रोष नहीं करना चाहिए। अवहेलना निंदा-वक्रता-छेदन, भेदन, जुगुप्सा इत्यादि नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार जिह्वा इन्द्रिय की भावना से जो भावित होता है वह साधु अन्तरात्मा, मनोज-अमनोज्ञ तथा शुभ-अशुभ रसों में राग द्वेष का सवरण करने वाला, मन-वचन-काय से गुप्त, इन्द्रियों का प्रणिध न करने वाला होकर धर्म का आचरण करता है।

पाँचवीं भावना—स्पर्शनेन्द्रिय को मनोज्ञ एव सुखकारक स्पर्श से स्वृत करना चाहिए। फौहारा, श्वेत चदन, शीतल निर्मल जल, नाना प्रकार के फूलों की सेज, खसखस, मुक्ताफल, मृणाल, चादनी, मोर की पींछी तथा ताड़ के पत्ते के पखे से उत्पन्न की हुई सुखद-शीतल वायु, ग्रीष्म काल में सुखद स्पर्श वाली तरह तरह की शय्या आसन और वस्त्र, शीत काल म अग्नि से तापना, सूर्य की धूप लेना, स्निग्ध मृदु-शीत-उष्ण-हलके ऋतु के अनुकूल सुखदायी स्पर्श, जो कि शरीर को सुख और मन को प्रसन्न करते हैं, इन सब तथा ऐसे ही अन्य अनेक मनोज्ञ तथा सुख-कारक स्पर्शों में साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए, राग-गृद्धि-मोह-लोभ-तोष—हास्य-स्मरण तथा तद्विषयक मति भी नहीं करनी चाहिए।

तथा साधु को स्पर्शनेन्द्रिय के द्वारा अमनोज्ञ और अशुभ स्पर्श—जैसे कि अनेक प्रकार के बन्धन, वध, ताडना, डाम, अति भार का लादना, अगोपागों का भग करना, नाखूनों में सुई चुभाना, चमड़ी छेदना उबलते हुए लाख के रस-क्षार-तेल-शीशों से सिंचन, खोड़े में डाल देना, रस्सी से बाधना, बेड़ी, साकल, हथकड़ी, कुभीपाक दहन, लिंग छेद, वृक्ष आदि पर ऊँचे लटकाना, शूली पर चढाना, हाथी के पैर से कुच-लवाना, हाथ-पैर-कान-नाक-होठ-सिर का छेदन, जीभ का तोडना, वृषण-नयन हृदय और दात का भङ्ग करना, खम्भे से बाँधना, लता और कोड़े से मारना, एड़ी-घुटने आदि पर पत्थर मारना, यत्र मे पेरना, करेंच (अत्यन्त खुजली पैदा करने वाला एक प्रकार का फल), अग्नि बिच्छू

का डङ्क, वायु-ताप-डांस मच्छर का उपद्रव होना, कष्टकारी आसन, कष्ट-जनक स्वाध्याय भूमि, ऐसे कर्कश-भारी-ठंडे गर्म-रूखे तथा अन्य अनेक प्रकार के अमनोज्ञ एवं अशुभ स्पर्शों में साधु को रोष-अवहेलना-निंदा-वक्रता छेदन-भेदन-जुगुप्सा आदि नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार स्पर्शेन्द्रिय भावना से जो भावित होता है वह अन्तरात्मा साधु मनोज्ञ-अमनोज्ञ और शुभ-अशुभ स्पर्शों में राग-द्वेष का संवरण करने वाला, मन-वचन-काय से संवृत, और इन्द्रियों का निरोध करने वाला बन कर धर्म का आचरण करता है।

इस प्रकार इस संवर द्वार का सम्यक् प्रकार से पालन करने पर यह सुंदर निधान रूप होता है। मन-वचन काय को सुरक्षित रखने वाले इन पाँचों कारणों (भावनाओं) से यह अपरिग्रह योग धैर्यवान् और मतिमान् मुनि को जीवन-पर्यन्त निर्वाह करना चाहिए। यह योग आस्रव रहित, निर्मल, अछिद्र, अपरिस्रावी, असंक्लिष्ट, शुद्ध और समस्त जिनेन्द्रों द्वारा अनुज्ञात है। इस प्रकार यह संवर द्वार स्पृष्ट पालित शोधित-तीर्ण-उपदिष्ट अनुपालित और भगवान् की आज्ञा से आराधित होता है।

ऐसा भगवान् ज्ञात मुनि (भगवान् महावीर) ने उपदेश दिया है, प्ररूपण किया है, प्रसिद्ध किया है, सिद्ध किया है। यह सिद्ध-शासन पूज्य है, सदुपदिष्ट है, प्रशस्त है।

हे सुव्रत (जम्बू!) यह पाँचों महाव्रत सैंकड़ों निर्दोष हेतुओं द्वारा अरिहन्त भगवान् के शासन में विस्तार से कहे गये हैं। संक्षेप से पाँच संवर हैं और विस्तार से पच्चीस हैं।

संवर का फल—पाँच समितियों से युक्त, सम्यगदर्शन-ज्ञान से सहित, कषाय और इन्द्रियों के संवर से युक्त, प्राप्त संयम में यतनावान् अप्राप्त में प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने वाला, अतएव निर्मल सम्यक्त्व वाला साधु इन संवरों का परिपालन कर के चरम शरीरी होगा।

परिशिष्ट

[पारिभाषिक शब्दों का संक्षिप्त अर्थ]

पृष्ठ ४ त्रस और स्थावर—

जो जीव चल-फिर सकते हैं, जिन्हें स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन पाँच इन्द्रियों में से कम-से-कम दो इन्द्रियाँ प्राप्त हैं वे त्रस और केवल स्पर्शन इन्द्रिय वाले जीव स्थावर हैं।

पृष्ठ ६ सूक्ष्म, बादर, प्रत्येक, साधारण—

कोई-कोई जीव इन्द्रियों से नहीं जाने जा सकते वे सूक्ष्म हैं। जो इनसे विपरीत हैं वे बादर कहलाते हैं। जो जीव किसी शरीर का अकेला स्वामी होकर रहता है वह प्रत्येक है। एक ही शरीर का आश्रय लेकर-स्वामीपन से रहने वाले अनन्तानन्त जीव साधारण कहलाते हैं।

पृष्ठ ८, संज्ञी-असंज्ञी-

विशिष्ट संज्ञा-चेतना-विवेक वाले मन सहित जीव संज्ञी और इनसे विपरीत जीव असंज्ञी कहलाते हैं।

पृष्ठ ८ पर्याप्त—

पुद्गलों को ग्रहण कर उसे आहार, शरीर, इन्द्रिय आदि रूपों में परिणत करने वाली शक्ति को पर्याप्ति कहते हैं। वह शक्ति जिन्हें

प्राप्त हो जाती है वे पर्याप्त कहलाते हैं। पर्याप्तियाँ छह हैं—आहार पर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, उच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति, मन पर्याप्ति। भगवती सूत्र में भाषा और मन पर्याप्ति की एक साथ गणना करके पाँच भेद बतलाये गये हैं।

पृष्ठ ६. लेश्या—

क्रोध, मान, माया और लोभ से युक्त मन-वचन-काय की प्रवृत्ति लेश्या कहलाती है। विशेष विवरण के लिए प्रज्ञापना सूत्र का लेश्यापद देखिये।

पृष्ठ १०. परमाधामी देव—

परमाधामी या परम-अधार्मिक एक प्रकार के असुर-देव हैं। यह अत्यन्त क्रूर स्वभाव वाले, दूसरे के दुःख में सुख मानने वाले होते हैं। ये १५ प्रकार के होते हैं। नारकी जीवों को दुख पहुँचाना आपस में लड़ाना और तमाशा देखना इनका काम है। इनकी करतूतों का दिग्दर्शन प्रकृत सूत्र में ही है।

पृष्ठ १० वैक्रिय शरीर—

जो शरीर कभी छोटा, कभी बड़ा, कभी पतला, कभी मोटा, कभी एक, कभी अनेक-इत्यादि विविध रूप धारण कर सकता है उसे वैक्रिय शरीर कहते हैं। सभी देव और नारकी वैक्रिय शरीर वाले होते हैं। पूर्व जन्म के शुभकृत्य से किसी-किसी मनुष्य और तिर्यंच को भी ऐसी शक्ति प्राप्त हो जाती है।

पृष्ठ ११ पल्योपम, सागरोपम—

असंख्यात वर्षों का एक पल्योपम होता है और दस कोडा-कोडी-(करोड से गुणित करोड) पल्योपम का एक सागरोपम कहलाता है। यह लोकोत्तर गणित की संज्ञाएँ हैं।

पृष्ठ १४ कुलकोटि—

जिनसे शरीर बनता है उन नो कर्म वर्गणा जाति के पुद्गलों के भेदों को कुल कहते हैं। यह कुल पृथ्वीकाय के २२ लाख कोटि, जल और वायु काय के ७ लाखकोटि, अग्निकाय के ३ लाख कोटि, जलचरों के १२॥ लाख कोटि, पक्षियों के १२ लाख कोटि, पशुओं के १० लाख कोटि, उरपरिसर्प के ९ लाख कोटि, देवों के २६ लाख कोटि, नारकियों के २५ लाख कोटि, मनुष्य के १२ लाख कोटि हैं।

पृष्ठ ३६. आठ कर्म—

एक जाति के पुद्गल, जो आत्मा की विभिन्न शक्तियों को ढँकते हैं या विकृत कर देते हैं। कर्म के स्थान पर अन्य दर्शनों मे अदृष्ट, माया, अविद्या आदि की कल्पना की गई है। जैन-दर्शन मे आठ कर्म यह हैं—(१) ज्ञानावरण (२) दर्शनावरण (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र (८) अन्तराय।

पृष्ठ ४१ सहनन-सस्थान—

हड्डियों के बन्धन का सहनन कहते हैं और शरीर की आकृति सस्थान कहलाती है।

पृष्ठ ४१ सम्यक्त्व—

सम्यक्त्व अर्थात् निर्मल अध्यात्मदृष्टि। देव, गुरु, धर्म का सच्चा स्वरूप समझकर उन पर पूर्ण श्रद्धाभाव रखना। सत्य-असत्य का विवेक रखना।

पृष्ठ ५०. जुगलिया भोगभूमि—

जहाँ जीवन-निर्वाह के लिए असि, मसि, कृषि, वाणिज्य आदि व्यापारों की आवश्यकता नहीं होती, केवल कल्पवृक्षों से निर्वाह होता

है वह भोगभूमि या अकर्मभूमि कहलाती है। उस समय उत्पन्न होने वाले मनुष्य, स्त्री पुरुष के जोड़े रूप में उत्पन्न होते हैं। अतएव उन्हें जुगलिया कहते हैं।

पृष्ठ ५० देवकुरु, उत्तरकुरु—

विदेह क्षेत्र में पूर्व और पश्चिम के भूखण्डों को देवकुरु उत्तरकुरु कहते हैं। इन भूखण्डों में सदैव अकर्मभूमि रहती है। वहाँ के निवासी कल्पवृक्षों से अपना निर्वाह करते हैं।

पृष्ठ ६०. कल्पोत्पन्न, कल्पातीत—

जैसे मनुष्यों में राजा, पुरोहित, सेनापति, सेना, प्रजा आदि का भेद भाव है उसी प्रकार जिन देवताओं में इन्द्र आदि भेद होते हैं वे कल्पोत्पन्न कहलाते हैं और उच्च श्रेणी के देव, जिनमें यह भेद नहीं होते, कल्पातीत कहे जाते हैं। वे देव सब स्वतन्त्र—अहमिन्द्र हैं।

पृष्ठ ७१ प्रतिक्रमण—

मानव अनेक प्रकार की सावधानी रखने पर भी कभी शुभयोग से च्युत होकर अशुभ योग में चला जाता है। उस अशुभ योग से पुन लौट कर शुभ योग में आना प्रतिक्रमण कहलाता है।

पृष्ठ ७१ संयोजना दोष—

संयोजना का अर्थ है मिलना। मुनि दूध आदि पदार्थों में शक्कर आदि स्वादवर्धक पदार्थ जिह्वा की लालुपता के वश मिलाकर आहार करे तो उसे संयोजना दोष लगता है। मुनि स्वाद की अपेक्षा न रखते हुए अशुद्ध-भाव से आहार करता है।

पृष्ठ ७४. पूर्व—

जिन भगवान् द्वारा उपदिष्ट वाङ्मय द्वादशाङ्ग (बारह अङ्गों) में विभक्त है। इन बारह अङ्गों में से, दृष्टिवाद नामक अङ्ग का एक

विस्तृत भाग पूर्व कहलाता है। खेद है कि इस समय यह पूर्व-श्रुत उपलब्ध नहीं है।

पृष्ठ ७५ बारह प्रकार की भाषा—

प्राकृत, सस्कृत, मागधी, पैशाची, शौरसेनी और अपभ्रंश, यह छह प्रकार की गद्य रूप और छह प्रकार की पद्य रूप भाषा।

पृष्ठ ७५ सोलह प्रकार का वचन—

(१) एक वचन (२) द्विवचन (३) बहुवचन (४) स्त्रीवचन–स्त्रीलिंगवचन (५) पुरुष वचन–पुँल्लिङ्ग वचन (६) नपुसक वचन–नपुसक लिंग वचन (७) अध्यात्म वचन–मन की बात कहने की इच्छा न होने पर भी अनायास निकल जाना। जैसे रूई का व्यापारी पानी के बदले 'रूई दो' ऐसा बोल उठे। (८) उपनीत वचन–गुणयुक्त वस्तु का कथन करना (९) अपनीत-वचन--निन्दापूर्ण कथन करना (१०) उपनीत-अपनीत वचन- पहले प्रशसा करके फिर निन्दा करना। जैसे यह रूपवती है परन्तु दुराचारिणी है। (११) अपनीत-उपनीत वचन–पहले निन्दा करके फिर प्रशसा करना। (१२) अतीत-वचन--भूतकालीन प्रयोग (१३) प्रत्युत्पन्न वचन--वर्तमान कालीन प्रयोग (१४) अनागत वचन- भविष्य कालीन प्रयोग करना (१५) प्रत्यक्षवचन- जो वस्तु जिस रूप मे दीखती हो उसे वैसा ही कहना। जैसे-स्त्री वेषधारी नट को स्त्री कहना (१६) परोक्षवचन--परोक्ष वस्तु का कथन करना।

पृष्ठ ७५, दस प्रकार का सत्य—

(१) जनपद सत्य—जिस देश मे जो भाषा प्रचलित हो उसे बोलना जनपद सत्य है।

(२) सम्मत सत्य—जैसे जो अरविंद सो कमल, इस प्रकार पर्यायवाची शब्द का प्रयोग करना।

(३) स्थापना सत्य—स्थापित किया हुआ तौल, नाप आदि।

(४) नाम सत्य—जिसका जो नाम है उसे उस नाम से बुलाना, भले ही उसमें नाम के अनुसार गुण न हों।

(५) रूप सत्य—जैसे साधु का वेष पहने हुए व्यक्ति को साधु कहना।

(६) प्रतीत्य सत्य—अन्य वस्तु का आश्रय लेकर अन्य वस्तु का कथन करना। जैसे अनामिका से कनिष्ठा अंगुली छोटी है।

(७) व्यवहार सत्य—आग जलती है, घड़ा झरता है, यह रास्ता अमुक गाँव जाता है, ऐसे व्यावहारिक प्रयोग करना।

(८) भाव सत्य—निश्चयात्मक वचन जैसे—गुड में भाव से पाँचों रसों की विद्यमानता होने पर भी उसे मीठा कहना।

(९) योग सत्य—किसी सम्बन्ध से किसी शब्द का प्रयोग करना। जैसे—दंड के सम्बन्ध से दंडी कहना।

(१०) औपम्य सत्य—उपमा-वचन। जैसे—समुद्र जैसा तालाब, चन्द्र सदृश मुख।

सूचना।—समयाभाव से कुछ ही पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण परिशिष्ट में दिया गया है। —अनु०

गिरिजादत्तजी त्रिपाठी, एम. ए. (संस्कृत व हिन्दी)
व्याकरण- न्यायाचार्य. साहित्य-शास्त्री. प्रिंसिपल
संस्कृत कॉलेज, अलवर

की

सम्मति

"प्रश्नव्याकरण सूत्र" को मैंने देखा। लेखक ने साधारण जनता को इस दर्शन के विषय में अवगत कराने के लिए सफल प्रयत्न किया है। वाक्यों की रचना सरल होते हुए भावों से भरी हुई है।··· ··· ··· ··· . . ···

··· ···ज्ञात मुनि [भगवान महावीर] के उपदेश सुन्दर तरीके से दिये गए हैं जिनसे पाठकों को विशेष लाभ होगा।